मैचबॉक्स

81

लघु कथा संकलन

डॉ लता कादंबरी गोयल

मैच बॉक्स

81

डॉ. लता कादंबरी गोयल

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक

यह पुस्तक मैं समर्पित कर रही हूँ

मेरी स्वर्गवासी प्रिय माँ **राधारानी तुलस्यान** को,

जिनसे मुझे हमेशा शिकायत थी कि मुझे इतने ऊँचे आदर्शों में आपने क्यों पाला? जबकि स्वार्थ का बोलबाला हर तरफ है; पर जिंदगी के अनेकानेक सोपानों को तय कर चुकने के बाद बड़े आत्मविश्वास के साथ मैं आज कह सकती हूँ कि…

'जीवन मूल्य' कभी मरते नहीं हैं, अंतर बस इतना है कि रूप बदल-बदलकर अकसर वे हमारे सामने आ खड़े होते हैं।

आपकी याद में,

कभी चैन से न रह सकी!

आपकी बेटी

लता कादंबरी गोयल

इस पुस्तक के सुंदर चित्रांकन का कार्य बड़ी लगन, निष्ठा एवं प्रेम के साथ मेरी पुत्री 'कादंबरी' ने किया है। मेरी कल्पनाओं को साकार रूप देने के लिए उसने जो श्रम किया है, उसका धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। पर इतना सच है कि संवेदनाओं के चेहरे एक से होते हैं, ईश्वर तुम्हें निरंतर प्रगति मार्ग पर प्रशस्त करे, तुम निरंतर नई ऊँचाइयों को छुओ, मेरी ईश्वर से तुम्हारे लिए यही प्रार्थना है।

अनुक्रम

समीक्षा
हृदय-स्पंदन (अपनी बात)
पच्चीस सालों बाद
चतुर खिलाड़ी और जज्बात
फूली रोटी
फेसबुक वाली बहू
स्मृतियों में माँ
नदी और नारी संवाद
भगवान् अकेला है
औरत और मर्द
सचमुच माँ!
आइसोलेशन
चड्डी-बनियान
फिक्र मत करना चाँद
अच्छे लोग
शुक्रिया पापा
नर न मादा
हार या कि जीत
साहित्य और मीडिया
वो लड़का
ब्लैक ऐंड व्हाइट
चौराहे पर खड़ी लड़की
गरजो नहीं, बरस जाओगे
इश्क और प्यार

वाह जनाब
तूफान के बाद
मिक्स पैक
शर्म न हया
लेखिका
गुस्ताखियाँ
छिलके
अंदर-बाहर
दरख्त पर बैठी चिड़िया
चाय का प्याला
दिलों की बातें
समाजवाद
नाटक भीतर नाटक
समय की समझ
अपना घर
राक्षस
इज्जत और पैसा
कुत्तेजी
कल और आज
गहराई
कठौती में गंगा
यह कैसा न्याय?
साहित्य की आत्मकथा
शादी डॉट कॉम
गुनहगार
सॉयोनारा

किसका पोस्टमार्टम?
किताबें बोलती हैं
चैंबर
बूढ़ा-बचपन
कभी-कभी ऐसा भी होता है
जीवन-मृत्यु
आत्ममुग्ध
अधूरा स्वप्न
अपने-पराए
अजनबी
बादल और धरती
बुढ़ापे की माँ
चर्चा लूट की
छोटा कमरा
दूर की आवाज
अनुपमाजी
गिद्ध
हिंदी की कक्षा
हम औरतें
जानती हो माँ
जीवन-नृत्य
कानाफूसी
क्यों बहकते हो तुम?
क्यों करते तुम माथा-पच्ची!
नन्हे-नादान
देव-पितर

राधा
रसोई में पकते खयाल
छूमंतर
वास्तुशास्त्र
वाह, वाह, क्या बात है!
पॉलिथीन और गौ-हत्या
बार हाउस
अंतिम पन्ना

समीक्षा

'मैच बॉक्स 81' नाम से ही पता चल जाती है लेखिका के विचारों की गहराई! एक-एक कहानी पढ़ती हूँ और पढ़ती ही चली जाती हूँ। सोचती हूँ कि कैसे कोई इतने वृहद् विषयों पर इतनी सहजता से लिख सकता है?

खासकर उसके निर्जीव पात्रों का अनेक कहानियों में चित्रण उसकी मनोवैज्ञानिक समझ व दिव्य दृष्टि को दरशाता है।

एक-एक कहानी समाज के सामने माचिस की जलती तीली के समान एक ज्वलंत प्रश्न छोड़कर आगे बढ़ जाती है। लता की कहानियाँ ही नहीं, उसका व्यक्तित्व भी मुझे आकर्षित करता है। मुझे वह दिल-दिमाग, रूप व गुण से समृद्ध एक ऐसी महिला लगी, जिसे अपने लेखन तथा कलाओं के माध्यम से अभी और आगे जाना चाहिए।

यूँ ही हमेशा अच्छे लेखन के माध्यम से आगे बढ़ती रहो

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ

१२।३।२०१७

(चित्रा मुदगल)

हृदय-स्पंदन (अपनी बात)

कभी-कभी मन में खयाल आता है···मैं क्यों लिखती हूँ? मन की कोटरों में जब अंदर घुसकर देखा तो पाया—न जाने कितनी कुंठाएँ, कितने आदर्श, कितने भाव और कितनी जिम्मेदारियाँ अंदर दुबकी बैठी थीं!

मैंने कहा···"यूँ छुपकर बैठने से काम न चलेगा, आओ! कहानियों की शक्ल में तुम्हें सँवार दूँ।" और तब से लेकर अब तक न जाने कितने भाव और विचार कहानियों की शक्ल लिये मेरी पुस्तकों में आ समाए हैं।

मैंने महसूस किया है कि कोई बात सीधी कहने से ज्यादा कहानियों की शक्ल में जब आती है तो उसका सीधा प्रभाव पाठकों के मन पर पड़ता है।

इस बार मैंने अपने समाजोपयोगी विचारों और भावों को 'मैच बॉक्स 81' में डाला है। जरा निकालिए तो मैच बॉक्स में से एक तीली तो···और फिर उसको जलाइए। कैसी नीली, पीली, लाल, गुलाबी 'लौ' छोड़कर अचानक बुझ जाती है वो नन्हीं सी 'तीली'। ऐसी ही नन्हीं-नन्हीं कहानियों की शक्ल लिये ये 'तीलियाँ', मेरा मतलब मेरी ये छोटी-छोटी कहानियाँ हैं, जो रोशनी बिखेरकर बुझ जाती हैं।

जीवन के अंधकार से निकलने का एक छोटा सा प्रयास कर रही हूँ अपनी इन कहानियों के माध्यम से। आपमें से अगर किसी एक की भी समस्या का समाधान करने में सक्षम हो जाती हूँ तो समझ लीजिएगा कि मेरा लिखना सार्थक हुआ।

आपकी

'लता' कादंबरी गोयल

पच्चीस सालों बाद

शादी की पच्चीसवीं सालगिरह पर दोनों ने गोवा जाने का प्रोग्राम बनाया। इस बीच से उस बीच तक टहलते हुए कब तीन दिन निकल गए, पता ही न चला, लगता था जैसे अभी-अभी उनकी शादी हुई हो और वे हनीमून पर गोवा आए हुए हैं।

रात के समय बागा बीच में घूमते हुए वे एक पब से दूसरे पब तक बेफ्रिक होकर टहलते रहते, कभी फिशपैडीक्योर करवा लेते और कभी हलके नशे का आनंद लेते हुए दोनों बाँहों में बाँहें डाले कैसीनो खेलने चले जाते। शाम होते ही चलती नर्म हवाएँ उन्हें एक अलग ही रोमानियत से भर देतीं और चाँदनी रात में समुद्र से उठती-गिरती लहरों में वे दोनों अपनी सुधबुध खोए आधी रात तक पब में मस्ती करते रहते।

एक दिन पति ने बड़े रोमांटिक अंदाज में पत्नी से अपने शरीर पर टैटू बनवाने के लिए सहमती माँगते हुए कहा…"बताओ प्रिय! तुम्हारे नाम का टैटू मैं अपनी बाँहों पर बनवाऊँ या फिर सीने पर?"

यह सुन पत्नी की रोमानियत उसके चेहरे से गायब हो गई, सहज चंचलता भी न जाने कहा उड़ गई और उसकी जगह पर एक धीर-गंभीर खड़ी गृहणी कह रही थी…"गौरव अगर संभव हो तो पच्चीस सालों के बदले मेरा नाम तुम प्रॉपर्टी के कागज पर लिखवा दो, ताकि बचा हुआ जीवन मैं तुम्हारे साथ असुरक्षा के दायरे से निकलकर सुखपूर्वक जी सकूँ।"

यह बात सुन पति कुछ सकपकाया, उस वक्त उससे कुछ बोलते नहीं बन रहा था।

पति को दुविधा में देख बड़े प्यार से उसके बालों को सहलाते हुए वह बोली…"जवानी के पच्चीस सालों के बदले अपने रहने के लिए एक मकान की चाहत करना क्या बहुत ज्यादा है?"

पर पति अभी भी न जाने किन खयालों में गुम था।

चतुर खिलाड़ी और जज्बात

क्रिकेट स्टेडियम के कोने में पड़ी तथा धूल-गर्दा खाई बॉल से वही सामने की जमीन पर पड़ा हुआ इनसानी जज्बात कुछ करुण हृदय होता हुआ बोला, "ऐसे अलग-थलग, गंदगी से भरे, सीले कोने में क्यों पड़े हुए हो, दोस्त?" बात को आगे बढ़ाते हुए फिर से बोला, "पिछली बार जब हम मिले थे, तब कैसे गोलू-मोलू तथा गोरे-चिकने लग रहे थे तुम! पर तुम्हारी यह दुर्दशा देखकर आज मुझे तुम पर बहुत तरस आ रहा है।"

अपनी नियति के अनुसार वह कुछ इधर लुढ़का, फिर कुछ उधर लुढ़का। जैसे-तैसे हिम्मत करते हुए जज्बात के नजदीक आकर धीमे से फुसफुसाया···"देखो, किसी से कहना नहीं, मेरी यह दुर्दशा इन नादान खिलाड़ियों के द्वारा बल्ले से मुझे बार-बार पीटने के कारण हुई है।" तभी कुछ आश्चर्य करता हुआ बॉल पूछ बैठा, "पर यह बताओ दोस्त कि तुम जैसे इतने भावपूर्ण जज्बात की यह दुर्दशा भला क्यों हुई? तुम तो उदार मनों के दिल के सिंहासन के शासक हो, पर आज तुम्हें यहाँ उपेक्षित पड़ा देख सचमुच मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। जहाँ तक मेरा सवाल है, यह तो मेरा प्रारब्ध था। अब तुम ही बताओ कि मैं इसके लिए क्या दु:ख मनाऊँ? पर तुम··· (कुछ रुककर) इस सीलन भरे तहखानें में? दम न घुटता होगा तुम्हारा?"

इतना अधिक अपनत्व पाकर आखिरकार जज्बात बोल ही पड़ा, "मेरे जैसे न जाने कितने जज्बात आज इधर-उधर पड़े हुए हैं भाई! जिनको पूछनेवाला अब वहाँ कोई नहीं है। सच तो यह है कि संकुचित होते दिलों में मेरे रहने के लिए जगह ही कहाँ बची है, तो मैंने सोचा···इससे पहले कि कोई चतुर खिलाड़ी आए और फिर से मुझसे खेलकर चला जाए, यह बात अब मुझसे बरदाश्त न होगी। अत: थोड़ा-मोड़ा अपने वजूद को बचाए रखने के लिए यहाँ अकेला ही पड़ा रहूँ तो ही अच्छा है।"

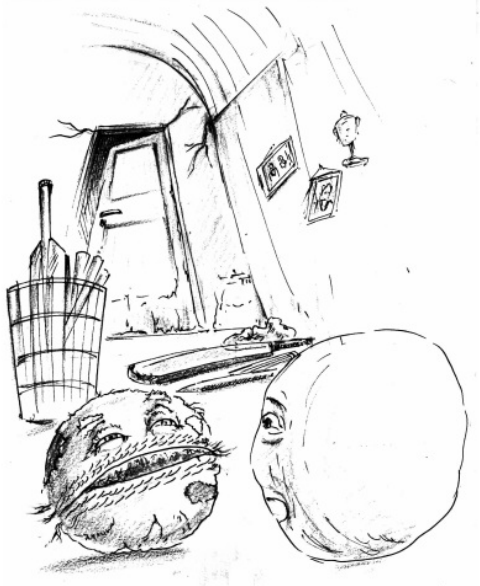

यह बात सुन आज गेंद एक अलग ही अनुभव से गुजर गया था। खिसियाई हँसी के साथ बोला, "वाह दोस्त!

देख रहा हूँ कि जो तेरा हाल, वह मेरा हाल···फिर भी जो तेरे साथ लोगों को खेलने में मजा आता है, वह मेरे साथ कहाँ!" एक गहरी साँस लेते हुए किसी संत के माफिक बोला, "यही तो जीवन की विडंबनाएँ हैं और हम सभी चाहकर भी इन विडंबनाओं से बच नहीं पाते दोस्त!"

फूली रोटी

"आ, ···आऊच"—गैस पर पड़ी फूली रोटी चिल्लाई, "अरे भाई चिमटे! भाई, जरा धीमे से पकड़ियो मुझे! जरा हौले से, जरा धीमे से, अरे, अरे घुटन हो रही है मुझे। कहीं तुम्हारी पकड़ से रगड़कर मैं फट ही न जाऊँ।

जब चिमटा इस पर भी न माना तो वह फूलकर कुप्पा हो, लाल-लाल होकर अपना गुस्सा दिखलाने लगी। अब तक तो वह फूलकर कुरकुरी भी हो चली थी; पर उस समय मिश्री की मम्मी को तो लग रहा था कि रोटी मन-ही-मन कुड़कुड़ा रही है। अत: उसे शांत करने के लिए उस पर मक्खन लगाने लगी, तब भी तो फूली रोटी का गुस्सा शांत न हो रहा था। उस वक्त कुड़कुड़ाती, मेरा मतलब कुरकुराती हुई उसकी गरम सतह पर तो मक्खन का असर भी ठीक से न हो पा रहा था।

अभी आपस में ये नखरे-वखरे, लड़ाई-झगड़े चल ही रहे थे कि तभी···"अरे पॉली! आज खाना मिलेगा या नहीं? दुकान की देरी हो गई है।" तेजी से आती नयन की आवाज सुन, उसका मौन भग्न हो आया···हड़बड़ाती हुई वह तेजी से गरम रोटी हाथ में ही लिये डाइनिंग टेबल की ओर दौड़ पड़ी।

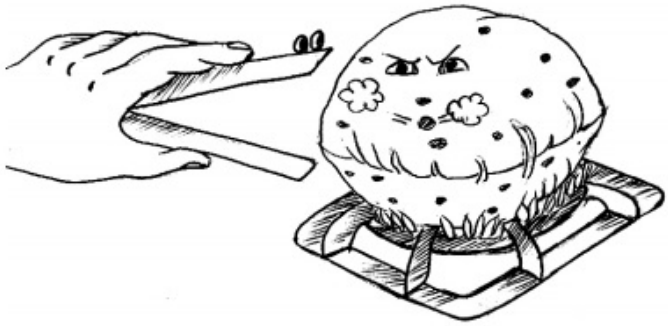

यह केवल आज की ही बात न थी। यह तो नयन का लगभग रोज का क्रम था। अब तक फूली रोटी आहिस्ता-आहिस्ता अपना फूलना-वूलना छोड़कर बेबस हो नयन की प्लेट में पड़ी थी। उसे नयन की ये रोज-रोज की हरकतें पसंद न थी। उस वक्त मन-ही-मन वह सोच रही थी।···'अरे! पेट ही तो भरना है, फिर क्या नरम और क्या गरम! बेचारी पॉली ऑफिस जाए, बच्चे सँभाले, या फिर मुझे देखे?' तभी उसकी बेचैनी देख कैसरोल में पड़ी रोटी मुसकराई।···आज उसकी मुसकराहट में उसे कटाक्ष का सा अनुभव हो रहा था, अत: गुस्से के साथ उसे देखते हुए वह बोली, "मुसकरा ले! मुसकरा ले, डायन! कब तक तू मुसकराएगी?"

एक-न-एक दिन तो ऐसा आएगा, जब 'औरतें जाएँगी ऑफिस और मर्द तुझे ही खाएँगे'।

तभी खच्च की एक आवाज हुई और मर्द के हाथों रोटी फट पड़ी।

फेसबुक वाली बहू

"ऐ ! अपनी बहू को सँभाल के रक्खा कर!" चचिया सास ने धमकी भरे शब्दों में वनिता से कहा।

"क्या हो गया चाचीजी, जो आपको आज सुबह-सुबह यहाँ आना पड़ा?" आश्चर्य के साथ वनिता बोली।

"बहुआँ नै इतनो सर चढ़ानो भी चोखीबात कोनी होवै। देख लियो एक दिन तेरी या बहू तन्नै वो रंग दिखावेगी कि···" उस वक्त गुस्से के मारे वो बड़बड़ाए चली जा रही थी।

दौड़कर वनिता चाची के लिए एक कटोरी में मिठाई और गिलास में ठंडा पानी ले आई। पानी पीकर वनिता के कंधों पर हाथ रखते हुए कुछ शांत होती हुई सी बोली, "देख बींदनी, तेरी बहू जो है न···" "हाँ, हाँ चाचीजी!" बड़ी इज्जत के साथ वनिता बोली, "सबकुछ सुनूँगी, पर पहले आप कुछ साँस तो ले लीजिए।" पर गुस्से के मारे आज उससे रुका नहीं जा रहा था। हाँफती हुई सी तेज आवाज में बोली, "यो देख, तेरी बहू मोबाइल में छोटा-छोटा कपड़ा पहनकर फोटू डाले है, ससुर, देवर, जेठ सब देखै हैं, चोखो कोनी लागै है।" एक ही साँस में चाचीजी बोल गईं।

यह बात सुन, न चाहते हुए भी वनिता को जोर की हँसी आ गई। फिर बात को कुछ सँभालते हुए बोली, "बस, इत्ती सी बात! मैं तो समझी कि कोई भूचाल आ गयो है।" अब तो चाचीजी की भृकुटी और तन गई। गुस्से में भरकर (कुछ धमकाते हुए) बोलीं, "ये मेरे सामने घूँघट में घूमनेवाली तू मन्नै कायदा-कानून समझावे है? देख लियो एक दिन जब घर में या नंगनाच करैगी, तब तू पछतावैगी।" "नहीं चाचीजी, मेरे लिए आप अधिक परेशान मत होइए। समय बहुत बदल गया है, इन बच्चों को अपने तरीके से जिंदगी जीने दीजिए।" पर अपनी सोच से बँधी चाचीजी भी कहाँ माननेवाली थीं। सुबह-सुबह उनका जो भोपू बजाना शुरू हुआ तो बंद होने का नाम ही न ले रहा था। इतना अधिक मालिकानापना देखकर अब तो वनिता को भी गुस्सा आ गया। कटाक्ष करते हुए बोली, "मैं पढ़ी-लिखी सास हूँ, कोई अनपढ़-गँवार नहीं। मुझे पता है कि अपनी बहू को कैसे रखना है। आप अपनी बहू को देखो!" पर यह क्या; अपनी आदत से लाचार चाचीजी तो अभी भी न जाने क्या-क्या बुदबुदाए चली जा रही थीं। अब तो अपने ऊपर की गईं न जाने कितनी बंदिशें उसे याद आने लगी, और कुछ सोचकर, नहीं-नहीं बहुत कुछ

सोचते हुए उसकी आँखें नम हो गईं। कुछ क्षणों बाद गुस्से में भरकर वह बोली, "क्यूँ बहू के पीछे पड़ा हो थे? जाकर अपने घर के मर्दों से पूछो कि वे यू-ट्यूब में क्या-क्या देखते रहते हैं?" फिर कुछ आक्रोश के साथ···"पक्की बात कहे देती हूँ कि थे बच्चों की जवानी बिगाड़ोगा तो वे भी थारो बुढ़ापो बिगाड़ैगा!" और बिना किसी की परवाह किए दनदनाती हुई वह अपने कमरे में वापस चली गई।

स्मृतियों में माँ

अपनी जिदंगी में माँ वह सब हो सकती है, जो हम कभी सोच भी नहीं सकते हैं। हमारा संयुक्त परिवार था। मैं सबसे अधिक क्रिएटिव समझी जाती थी, पर मैं जानती थी कि माँ मुझसे ज्यादा क्रिएटिव है; पर उसका क्रिएशन तो चूल्हा-चौका और सिलबट्टे के तले दब गया था। लोग समझते थे कि माँ का मिजाज बड़ा गरम है, पर मैं जानती हूँ कि पिताजी के रूखे बरताव के कारण सोलह साल की चहकती सी तरुणी का व्यक्तित्व सत्ताईस साल के पुरुष के अहं के सामने दफन हुआ जा रह था। फिर भी तो लोग गाहे-बगाहे…"मर्द तो ऐसे ही होते हैं," कहने से नहीं चूकते थे और सालों बीतते गए, माँ ने भी अपनी इसी नियति को सच मान लिया था।

रिश्तों की राजनीति उसे कभी पसंद न थी। उस दिन मैंने माँ को बड़े शौक से होंठों पर लिपस्टिक लगाते देखा, पर अगले ही क्षण सामने से आते हुए दादाजी को देखकर दोनों होंठ ऊपर-नीचे रखकर कुछ इस तरह से दबाने लगी, मानो उससे कोई बहुत बड़ा गुनाह हो गया हो। हर माँ की तरह मेरे बच्चे पढ़े-लिखें, आगे बढ़ें, गुण-संपन्न बनें, समाज में उनका नाम हो, इज्जत हो, यही सब तो वह चाहती थी और किस्मत ने साथ भी दिया। पर बच्चों को सँभालते हुए पति को सँभालना भूल गई। आदर्श जीवन जीने की चाहत लिये साधारण जीवन भी जीना मुश्किल हो गया। मैं और मेरे बच्चों के सामने उसे संसार सूना लगने लगा, क्योंकि एक-एक करके सभी बच्चे किसी-न-किसी वजह से अपने-अपने दायरों में सिमट गए। रह गए तो फिर से बस तोता-मैना का ही साथ।

जब तक मैना तोते की हाँ में हाँ मिलाती रहती, तोता खुश रहता, पर जैसे ही मैना ने कुछ अलग राग अलापा और वह बात जरा सी भी तोते के मन-माफिक न हुई तो जानो तोते का टें-टें चालू। घबड़ाकर मैना चुप हो जाती थीं या यों कहिए कि नींद की दवा खाकर सो जाती। तोते को वहम था कि वह बड़ा मृदुभाषी और विद्वान् है, इसीलिए टें-टें की आवाज कुछ और बढ़ा देता। अब तो दायरों में सिमटे बच्चे शादीशुदा हो गए। उनके साथ उनका अहंकार भी जिंदा होने लगा; कुछ अहंकार के साथ जिंदा थे तो कहीं सिर्फ अहंकार जिंदा था।

शांति की तलाश में माँ खुद को सती माँ की शरण में ले गई, पर जो बच्चे जिंदा न थे, मेरा मतलब जिनका केवल अहंकार जिंदा था, वे और हिंसक हो उठे, किया-धरा किसी और का था, न जाने यह भाग्य का खेल था या बेमेल शादी का जोड़ था या फिर माँ की अधिक भावुकता थी, या फिर पुरुषवादी सोच? कारण चाहे जो भी हो, पर सती दादी की शरण में गई माँ एक दिन खुद भी सती हो गई।

पर वह आज भी जिंदा है मेरे पूरे वजूद में। लेकिन मेरे बाप के घर में लगी फोटो में, उनके दिलों में, उनकी स्मृतियों में कहीं पर भी मुझे वह दिखाई नहीं देती। पर इतना जरूर है, कभी-कभी मेरे सपनों में आकर कह जाती है…"मजबूत रहना बेटा! नहीं तो ये दुनियावाले, यदि अपने कलेजा भी चीरकर रख देगी तो भी बोलेंगे कि कलेजो चीर दियो है, जरूर इकै पीछै भी इको कोई स्वार्थ होगो।"

तभी अपने चेहरे पर पड़ी कुछ बूँदों को महसूस कर मैं उठ जाती हूँ और आँखों को मलते हुए फिर से सोने का प्रयास करने लगती हूँ।

नदी और नारी संवाद

औरत ने पास बहती नदी से पूछा, "नदी कैसे बहती हो तुम सदियों से? न जाने किस-किस से टकराकर, चूर-चूर हो जाती होगी तुम, फिर भी तो बनाती हो तुम नई-नई राहें समाज के उत्थान के लिए, पतितों के कल्याण के लिए। कितनी पुण्यात्मा हो तुम।

कहीं तुम्हारे शुष्क अधर ने ही जल पी लिया होगा तुम्हारा या फिर कभी विपदा की पहाड़ी ने रोक लिया होगा तुम्हारा रास्ता, पर तुम बढ़ती गई अपने लक्ष्य को पाने के लिए और आखिरकार खींच ही डाली एक बड़ी सी लकीर धरती की छाती पर।

शांत नदी ने हौले से अँगड़ाई ली और बोली, "मैंने कुछ खास नहीं किया है, यह तो मैं युगों-युगों से करती चली आई हूँ, पर यह भी सच है कि तुम्हारा-मेरा एक ही रूप; है तभी तो पहचान सकी हो तुम दर्द मेरे, क्योंकि दर्द को तो दर्द ही जान सकता है, बहन!"

भगवान् अकेला है

एक मुसलमान फकीर था। रात उसने सोते समय सपना देखा कि वह स्वर्ग चला गया है। स्वर्ग के रास्ते पर बड़ी भीड़-भाड़ है, लाखों लोगों की भीड़ है। उसने पूछा कि आज क्या है?

तो भीड़ के रास्ते चलते किसी आदमी ने कहा कि आज भगवान् का जन्मदिन है और उसी का जलसा मनाया जा रहा है। यह सुन उसने कहा कि बड़े सौभाग्य है मेरे, मैं बहुत दिनों से भगवान् के दर्शन करना चाहता था। आखिरकार मुझे आज यह मौका मिल ही गया। अच्छे समय पर मैं स्वर्ग आ गया।

फिर घोड़े पर सवार, एक शानदार आदमी, जिसके साथ लाखों लोग निकल रहे थे। यह दृश्य देखकर उसकी आँखें चमक उठीं। वह झुककर लोगों से पूछता है, जो घोड़े पर सवार हैं, क्या वे ही भगवान् हैं? तो किसी ने कहा कि नहीं, ये भगवान् नहीं हैं, ये 'हजरत मोहम्मद' हैं, और उनके पीछे उनको मानने वाले लोग हैं। कुछ ही क्षणों बाद जुलूस वहाँ से निकल गया।

फिर दूसरा जुलूस निकलता है, जिसमें रथ पर सवार एक बहुत महिमाशाली व्यक्ति बैठा है। वह पूछता है, क्या यही भगवान् हैं? किसी ने कहा कि नहीं, ये भगवान् नहीं हैं, ये राम हैं और राम के माननेवाले लोग उनके पीछे हैं। फिर वैसे ही कृष्णा निकलते हैं और उनके माननवाले लोग भी। फिर क्राइस्ट और बुद्ध और महावीर और जरथुस्त्र और कन्फ्यूशियस और न मालूम कितने महिमाशाली लोग निकलते हैं और उनको माननेवाले लोग निकलते हैं। आधी रात बीत जाती है, फिर धीरे-धीरे रास्ते में सन्नाटा हो जाता है। फिर वह आदमी सोचता है कि अभी तक भगवान् क्यों नहीं निकले? वे कब निकलेंगे?

और जब सारे लोग जाने के करीब हो गए हैं, रास्ता उजड़ने लगा है, तो वह क्या देखता है कि बूढ़े से घोड़े पर एक बूढ़ा सा आदमी अकेले, चला आ रहा है। उसके साथ कोई भी नहीं है। वह हैरान होता है कि आखिर ये महाशय कौन हैं? जिनके साथ कोई भी नहीं है। तो वह चलता हुआ आदमी कहता है कि हो न हो, ये भगवान् होंगे। क्योंकि भगवान् से अकेला इस दुनिया में कोई हो ही नहीं सकता। वह जाकर घोड़े पर बैठे हुए उस बूढ़े आदमी से पूछता है कि महाशय क्या आप ही भगवान् हैं? मैं बहुत हैरान हूँ, मोहम्मद के साथ बहुत लोग थे, क्राइस्ट के साथ बहुत लोग थे, राम के साथ बहुत लोग थे, सबके साथ बहुत लोग थे, पर आपके साथ कोई भी नहीं!

भगवान् की आँखों से आँसू गिरने लगे और भगवान् ने कहा, सारे लोग उन्हीं के बीच बँट गए कोई बचा ही नहीं, जो मेरे साथ हो सके। कोई राम के साथ है, तो कोई कृष्ण के साथ, पर मेरे साथ तो कोई भी नहीं। और मेरे साथ वही हो सकता है, जो किसी के साथ न हो, मैं अकेला ही हूँ। घबराहट में उस फकीर की नींद खुल गई। नींद खुलते ही उसने पाया कि वह जमीन पर अपने झोंपड़े में है। वह पास-पड़ोस में जाकर कहने लगा कि; मैंने एक बहुत दु:खद स्वप्न देखा है, बिल्कुल झूठा स्वप्न देखा है। मैंने देखा कि भगवान् अकेला है। भला यह कैसे हो सकता है? वह फकीर मुझे भी मिला और मैंने उससे कहा कि "तुमने सच्चा ही स्वप्न देखा है। भगवान् से ज्यादा अकेला कोई हो ही नहीं सकता है जो मुसलमान है। वह भगवान् के साथ नहीं हो सकता। जो जैन है वह भगवान् के साथ नहीं हो सकता। जो कोई भी नहीं है, जिसका कोई विश्लेषण नहीं है, जो किसी का अनुयायी नहीं है, जो किसी का शिष्य नहीं है, जो बिल्कुल अकेला है जो बिल्कुल नितांत अकेला है वही केवल उस नितांत अकेले से जुड़ सकता है।

औरत और मर्द

एक दफा किसी महान् विचारक से किसी ने सवाल किया कि "आपके विचार से···औरत क्या है?" कुछ क्षण विचार कर; चेहरे पर गंभीर मुद्रा बनाकर वह बोला कि "औरत किसी भी मर्द के उन सभी पुरखों को जानती है, जो उसके जन्म से पहले मर चुके होते हैं।" यह कहकर उसने एक लंबी साँस ली।

जिज्ञासावश उसने फिर सवाल किया कि "फिर महोदय आपकी निगाह में मर्द क्या है?" कुछ सोचकर विचारक बोला, "हर दूसरे मर्द को हर दूसरी औरत में अपनी अजनमी संतान दिखाई देती है।" यह कहते हुए उसने अपनी निगाहें नीची कर लीं।

उसका जवाब सुन उस वक्त उससे कुछ बोलते नहीं बन रहा था और अवाक् खड़ा वह उसे एक टक देखे चला जा रहा था।

सचमुच माँ!

सचमुच माँ, यह दुनिया कितनी खूबसूरत है। मैंने अभी-अभी ढलते हुए सूरज को देखा है। यहाँ की सड़कें कितनी साफ-सुथरी और अच्छी हैं। सारी कॉलोनियाँ एकसार बनी हुई हैं, डिसिप्लिन भी बहुत है और हाँ, यहाँ पर लोगों के बीच आपसी समानताएँ भी खूब दिखाई देती है। हिंदू, मुसलिम, तमिल, तेलुगु, फ्रेंच, सभी यहाँ पर हिल-मिलकर रहते हैं और हाँ, अब मैं अगले हफ्ते कोचीन जाने का प्लान कर रही हूँ।" इस प्रकार बड़े उत्साह के साथ सोनल मुझे अपने न जाने कितने किस्से फोन पर सुनाए चली जा रही थी।

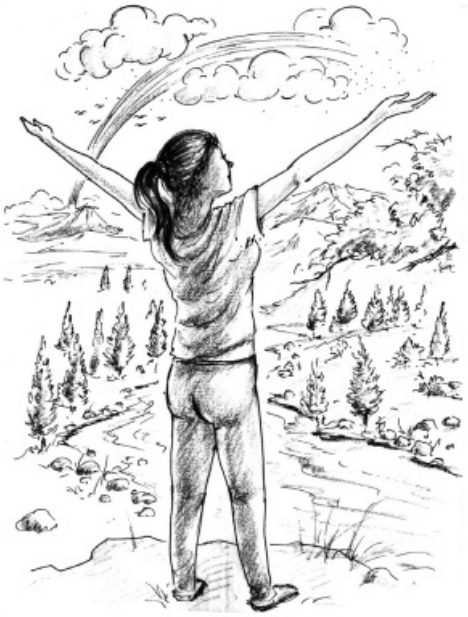

मैंने भी कहा, "अच्छा, हो सके तो अगली दफा हम दोनों साथ केरल जाने का प्रोग्राम बनाते हैं।" सोनल, "नहीं भइया, उत्तराखंड में कौडियाला या कहीं और जाने के बारे में सोच रहा है।" "देखा जाए तो लेह-लद्दाख का एडवेंचर भी कुछ कम नहीं है।" मैंने अलग से अपनी बात जोड़ी।

"वो तो सच है, माँ! पर एक बात बताओ, पहले मुझे यह दुनिया इतनी घुटी-घुटी सी और नीरस क्यों लगती थी? अब तो यहाँ नदियाँ, तालाबों, प्रकृति, जल, थल, आकाश हर जगह यह दुनिया बड़ी ही सुंदर दिखाई देती है! सच पूछो तो लगता है कि इतना सबकुछ अनुभव करने के लिए मेरे पास वक्त ही कम है।"

कुछ सोचते हुए माँ बोली, "बेटा! जब मनों में अंधकार घिरा होगा तो रोशनी कहाँ से अंदर आएगी? सच पूछो तो आज तेरे अंदर जीने की चाहत ने ही तुझमें यह अहसास पैदा किया है।" कहकर माँ चुप हो गई···उधर से घीमी सी आवाज आई, "सचमुच माँ!"

आइसोलेशन

"आ गई महारानी! आखिर इतने दिनों बाद हमारा भी खयाल आ ही गया तुम्हें। जब खुद को आइसोलेट किया गया, तब पता चला कि इस वार्डरोव में इतने दिनों तक घुसे-घुसे हमारी क्या दुर्दशा हुई होगी?" बोल मारते हुए अलमारी में रखे कपड़े बोल पड़े।···अभी वार्डरोव में पड़े कपड़े बड़बड़ाते हुए अपनी दुर्दशा पर आँसू बहा ही रहे थे कि तभी ए.सी. की हवा का एक ठंड़ा झोंका पाकर अन्य कपड़े भी बोल पड़े, "आह! आज तो जान-में-जान ही आ गई है। कभी सोचा तुमने कि कितने दिनों से गुड़े-मुड़े रहकर हमारी क्या दुर्दशा हुई होगी?" तभी पलंग पर पड़ी नाइटी चहककर स्टाइल मारते हुए बोली, "अपन तो ऑल टाइम आजाद हैं जी।" यह सुन वार्डरोव में बंद कुरते, शर्ट, प्लाजो व अन्य ड्रेसेस को गुस्सा आ गया। बास्केट से उछलकर एक स्कर्ट बाहर आई और शिकायती लहजे में बोली, "देखो, गुचुड़-पुचुड़ कर मेरे बदन का तो सत्यानाश ही कर डाला है तुमने।" बातों को ओवर लैप करते हुए टी-शर्ट अपनी किस्मत पर मुसकराती हुई बोली···"मेरा तो बदन की लचीला है, मुझे किसी के सहारे की भला क्या जरूरत! पहनो, चाहे फेंको, मैं तो तुम्हारी सर्विस के लिए हमेशा से ही तैयार हूँ।

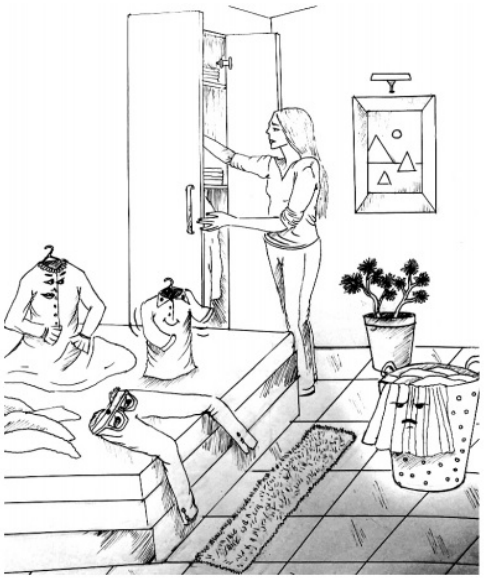

इस तरह से कपड़ों का बड़बड़ाना सुन सान्या को गुस्सा आ गया, वह तुनककर बोली, "बताओ, ऑफिर जाऊँ, घर के काम करूँ, बच्चे देखूँ या तुम सबसे मगज मारूँ?" उस समय उसे परेशान हुआ देखकर जींस दादा ने समझाते हुए कहा, "परेशान न हो बेटी, तुम्हारी समस्या को मैं बेहतर तरीके से समझ सकता हूँ। ठीक ही तो है, आजकल वर्किंग वुमेंस के पास टाइम ही कहाँ है? ऑफिस, मोबाइल, टी.वी., लैपटॉप, पिज्जा-बर्गर, वगैरह को सँभाले-सँभाले वैसे ही जान निकली जाती है।" फिर···कुछ पुचकारते हुए बोले···"तुम चाहो तो मैं महीनेभर तक तुम्हारे साथ बिना धुले रह सकता हूँ, तुमसे यह पक्का वादा रहा।" यह बात सुन सान्या की आँखों में चमक आ गई, तभी कुछ गंभीर मुद्रा बनाते हुए किसी संत की माफिक धीरे से जींस दादा बोल पड़े, "बुजुर्ग तो आखिर बुजुर्ग ही होते हैं न!" और तभी यह बात सुन किसी बच्ची के समान सान्या चहक उठी।

चड्डी-बनियान

अकेलापन भी कभी-कभी कितना कष्टकारी होता है, मन न जाने कहाँ-कहाँ भटकने लगता है! आज शेरू शेर का भी शायद ऐसा ही कुछ हाल हुए जा रहा था अत: भटकते-भटकते वह फॉरेस्ट ऑफिसर के बँगले के नजदीक आ पहुँचा। बाहर टी.वी. चलने की तेज आवाजें आ रही थीं। यों भी जंगल में आवाजें कुछ ज्यादा ही गूँजती हैं।

तभी फॉरेस्ट ऑफिसर की खिड़की से झाँककर शेरू शेर ने देखा···अंदर सब लाइटें बुझी हुई थीं और सामने की दीवार पर एक बड़ा सा एल.ई.डी. टी.वी. चल रहा था, तभी···डी.डी. टू पर प्रसारण आया—'असली शेर की पहचान, जो पहने 'शेरा' चड्डी और बनियान।'

यह बात सुन शेरू को एक बार तो अपने कानों पर भरोसा ही न हुआ। उस वक्त वो सोच रहा था···यह कैसे हो सकता है भला? फिर, कुछ सोचते हुए उसने अपने पीछेवाले दोनों पैरों के बीच झाँका। टी.वी. पर पुन: वही प्रसारण आया—'असली शेर की पहचान, जो पहने 'शेरा' चड्डी और बनियान।' अबकी बार फिर से यह देख शेरू का माथा ठनका। उस वक्त उसको तेज गुस्सा आ गया, बिना किसी की पहवाह किए दहाड़ा···"मैं चड्डी-बनियान नहीं पहनता, तो क्या मैं शेर नहीं हूँ?" कुछ क्षण रुका और फिर···एक बार फिर से दहाड़ उठा···अबकि बार की उसकी दहाड़ सुन पूरा जंगल ही काँप उठा और तभी अपनी लाल-लाल मोटी, गहरी आँखें लिये वह भरे कदमों से जंगल की ओर चल पड़ा···।

उधर टी.वी. पर अभी भी चल रहा था—'असली शेर की पहचान, जो पहने 'शेरा' चड्डी और बनियान।'

फिक्र मत करना चाँद

फिक्र मत करना चाँद, खोजने दो वैज्ञानिकों को तुम्हारी सतह पर खनिज और पानी के अवशेष। तलाशने दो खाए-अधाए लोगों को धरती बरबाद करने के बाद तुम्हारी सतह पर बसने की संभावनाएँ। भला बताओ तो! क्या ऑक्सीजन के बिना वे जी पाएँगे यहाँ पर? सपने हैं तो देखने दो उन्हें। हो सकता है कि उनके सपने सच भी हो जाएँ!

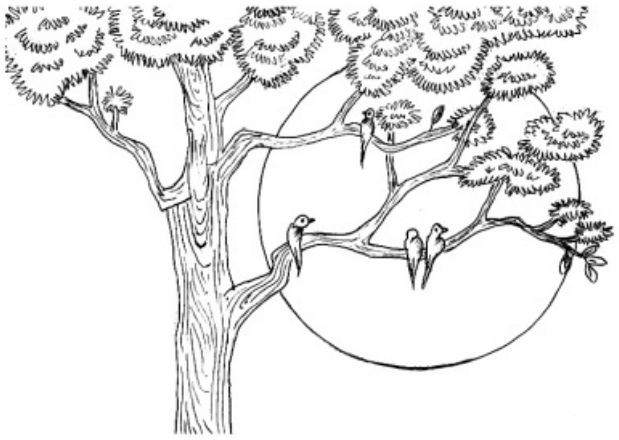

पर घबराओ मत चाँद! हम कवियों के दिलों में हजारों-लाखों सालों से बसे तुम हमारे लिए वैसे-के-वैसे ही रहोगे —महबूब के चेहरे की तरह चमकते, प्रेम के जैसे शीतल और ख्वाबों के जैसे तिलस्मी। हमारा चाँद अकेलेपन में पेड़ की पत्तियों से झाँककर वैसे ही शरारत करता रहेगा हमारे साथ। रात के अँधियारे में वैसी ही अठखेलियाँ करता रहेगा, जैसा कि आज तक करता आया है। कभी पहाड़ी तो कभी नदी में उतरकर वो हमारा मन वैसे ही बहलाएगा, जैसे कि आजतक बहलाता चला आया है, फिर उदास रातों में चुपचाप खिड़की से आएगा और हमारे बिस्तर पर आकर लेट जाएगा।

अत: फिक्र मत करना चाँद, तुम्हारी जगह हमारे अहसासों और सपनों में हमेशा जिंदा थी और रहेगी।

अच्छे लोग

"बड़ी-बड़ी बातें करना और गाल बजाना तो सभी को आता है, पर जब करने का वक्त आता है तो अच्छा बनने में सभी को नानी याद आने लगती है।"

यह कहते हुए दिव्या आज सुबह-सुबह बड़बड़ाए चली जा रही थी। निहारिका के द्वारा खुद को चीट किए जाने से आहत हुआ उसका मन आज बहुत कुछ कह देना चाहता था।

पर यह क्या, तभी उसके दिल का दर्द आँखों के रास्ते बह निकला। मन में एक बार फिर से खयाल आया, 'जब अच्छों का जमाना ही नहीं रहा, फिर बचपन में माँ हमें संस्कारवान बनाने के क्यों पीछे पड़ी रहती थी, जबकि छल का व्यापार हर तरफ फैला हुआ है।'

अब तो यह बात मन में आते ही उसे अपनी माँ पर ही गुस्सा आने लगा। 'क्या जरूरत थी मुझे महान् बनाने की! हाँ-हाँ, खुद का सिर तो ऊँचा उठाना ही था। पर आज सोसाइटी के साथ मेरा जो एडजस्टमेंट बिगड़ रहा है, उसका क्या? कौन समझाए इन आदर्शवादी माँ-बापों को?' उस वक्त यह सोचते हुए उसका चेहरा गुस्से से लाल हुए चला जा रहा था। उस वक्त उसका मन और अधिक बेचैन हो उठा। अब तो दिमाग में उठती हुई आँधियों को सँभालना उसके लिए मुश्किल हुए जा रहा था।

चिराग अभी स्कूल से वापस नहीं आया था। तभी उसे राहुल का खयाल हो आया।···टिन-टिन की आवाज से उसकी तंद्रा भंग हुई। राहुल को सामने से आते हुए देखकर उसे कुछ सुकून मिला। राहुल उसका छोटा भाई, जो बिना कहे ही उसके हर दु:ख-दर्द अपनी आँखों से भाँप लेता था, लगता था कि उसके और राहुल की आँखों के बीच कोई अदृश्य सा पुल है, जहाँ से गुजरते हुए उसका हर दु:ख-दर्द, हर तृष्णा, हर प्यास कम होने लगती थी।

तभी "अरे दिव्या, यह क्या?" कहते हुए राहुल ने उसकी सूनी आँखों में झाँका। अब तो इतना अपनत्व पाकर उसकी आँखें फिर से बरस उठीं। ऐसा लग रहा था कि आज वह अपने मन के सारे राज उसके सामने खोल देना चाहती है।

पास पड़े सोफे पर आहिस्ता से उसे बैठाता हुआ राहुल अपने रूमाल से बहन के आँसू पोंछते हुए तरह-तरह से उसे दिलासा देने लगता है। सुबकते हुए वह अपनी सारी व्यथा, किस तरह से उसने निहारिका को अपनी प्यारी सखी मानकर उस पर विश्वास किया, पर बदले में उसने उसके साथ जो भी बुरे बरताव किए, वो सभी बात उसे विस्तार से सुनाने लगी।

तभी बहन को गले लगाते हुए वह बोला, "देखो न बहन! चाहे कोई गुंडा हो, चोर हो या मवाली, भले आदमी की दरकार सभी को होती है। सच तो यह है कि जो जितना ज्यादा पाजी होगा, उसको उतना ही अच्छा आदमी चाहिए। बात बस इतनी सी है कि हमें ऐसे लोगों को हैंडल करना आना चाहिए।" अंत में किसी दार्शनिक की भाँति बोला, "वो अपना काम करे और हम अपना।"

यह जवाब सुनकर वह चौंक पड़ी।

तभी मुसकराता हुआ थोड़ी संजीदगी के साथ वह बोला—

"यू आर मोस्ट डिमांडिंग पर्सन।"

"रियली!"

"बिकॉज यू आर ए पॉयस सोल।"

"बिलीव मी, माई स्वीट सिस्टर!"

भाई को इस तरह समझाते हुए देखकर अबतक उसके चेहरे की मुसकान लौटने लगी थी, क्योंकि जब तक उसे अपने सभी प्रश्नों के उत्तर मिल चुके थे।

उधर राहुल कहे चला जा रहा था, "यह दुनिया चलती ही अच्छे लोगों से है, बहन। बाकी लोग तो इस दुनिया में बस गदर काटने आते हैं।" अब तक तो दिव्या के चेहरे पर दिव्य प्रकाश छा गया था और वह हौले से मुसकरा पड़ी।

शुक्रिया पापा···

अखबार···

आज का समाचार शहर के जाने-माने उद्योगपति···की···"बेटी बनी दुश्मन, वृद्धाश्रम के बाहर बेटी छोड़ आई निरीह बूढ़े बाप को।"

उधर बूढ़े बाप के हाथों में थी चिट्ठी···

"शुक्रिया मेरे जन्म का माध्यम बनने के लिए! शुक्रिया पेट पर पड़ी लातों का, जो आपने मारी थी, उस छह साल की नन्हीं बच्ची को! और शुक्रिया, उन हवाई चप्पलों की मार का, जो किशोरवय की वह जिद्दी लड़की ने खाई थी, जो किसी भी हाल में आपके जैसा बनना नहीं चाहती थी। ओ हाँ, शुक्रिया! जब आपने अपने सुख के वास्ते मेरा स्कूल छुड़वाकर पास बने एक साधारण से स्कूल में डाल दिया था, बिना इस बात को समझे कि कितना मिस करती रहती थी मैं अपनी सहेलियों को, जिसकी टीस आज तक मेरे लहू में उत्तेजना बनकर दौड़ा करती है। शुक्रिया नंबर कम आने पर मेरे रिपोर्टकार्ड को उपेक्षा से देखते हुए आपको अपनी शेखी बघारने के लिए। जानते हैं, कितना टूट जाती थी मैं आपके उस रिस्पांस से? पर यह सोचकर चुप हो जाती थी कि शायद पापा लोग ऐसे ही होते हैं! एक पंद्रह-सोलह साल की लड़की उस वक्त इससे ज्यादा सोच भी क्या सकती थी? किस-किस बात का मैं शुक्रिया अदा करूँ आपका! ओ हाँ···मेरी न पसंदगी की शादी और फिर गैर-जिम्मेदारी को निभाते हुए कभी मुड़कर मेरा हालचाल न पूछना। क्या ससुराल से मैके रहने आने पर बच्चों सहित नानू के घर पर कभी कोई सुकून भरा कोना दे पाए आप मुझे?

माना कि आप आत्मकेंद्रित स्वभाव के हैं। रिश्ते बनाना आपको पसंद नहीं है, पर एक बात बताइए पापा! क्या बेटियाँ रिश्तेदार होती हैं? या फिर जिगर का टुकड़ा? पर आज सुकून तलाश रहे हैं आप मुझमें। जो बोया नहीं, वही फसल चाहिए आपको? जब ऐसा प्रकृति में ही संभव नहीं, तब आप और मेरे बीच ऐसा कैसे संभव हो सकता है?

मेरा व्यापार फेल होने पर दमाद को अपने फेवर में लेकर समझाना कि यह तो लड़की है, आपको अपनी समझ से काम लेना चाहिए। यही था हमारी गृहस्थी के लिए आश्वासन आपका?

एक और शुक्रिया माँ के छत से गिर पड़ने पर घर में इतने लोगों की मौजूदगी के बाद भी ससुराल से तुरंत भागती हुई आई मुझसे उनकी पॉटी साफ करने को कहना। तो क्या शादीशुदा बेटियाँ सिर्फ गंदगी बटोरने को हैं और बेटे?…धन? इसी बात का तो नतीजा है यह दिन, पर मैं निशब्द हूँ आज। इसलिए यह चिट्ठी लिख रही हूँ आपको। कभी-कभी खयाल आता है कि कोई कैसे अकारण इतना निष्ठुर हो सकता है! तभी मन में खयाल आता है, शायद पितृसत्तात्मक माहौल में पले इन पापाओं से जाने-अनजाने ऐसे पाप होते रहते हैं और उधर वे भी बुढ़ापे का वास्ता दे-देकर बेटी-बेटी करते रहते हैं।

कैसे भूल सकती हूँ वह मम्मी का अकस्मात् दुनिया से चला जाना? और उस पर भी पिछले पच्चीस सालों में एक दिन भी क्या आपने मेरी माँ को याद किया? नहीं न! तो सच बताएँ पापा! बच्चे तो माँ से होते हैं, बाप तो माध्यम भर होते हैं। जब आप सच्चे मन से माँ के न हो सके तो मैं अपने मन में आपके लिए बिस्तर कैसे बिछा दूँ? फिर भी तो बिछाना चाहा, वह भी मेरी मर्जी के बिना, हमारे घर से ब्याज के रुपए खा-खाकर आपने फाड़ डाले।

अंत में हाथ जोड़कर शुक्रिया अदा करती हूँ आपके द्वारा दी गई उन सभी सुखद यादों को, जिसने न तो बचपन जाना और न ही जवानी, बस यों ही बड़ी होकर आज आपके सामने आ खड़ी हुई हूँ—अपराधिनी बनकर।

अंत में

शुक्रिया पापा!

चोट खाया आपका अंश।"

नर न मादा

सुप्रीम कोर्ट का आदेश पारित होते ही अपने अधिकारों को लेकर सजग महिलाएँ हजारों की संख्या में शृंखला बनाए मंदिरों के बाहर कमर कसे खड़ी थीं। पहरे कड़े थे। मंदिर में प्रवेश मिलना मुश्किल था। कई दिनों तक यही क्रम चलता रहा। तभी टी.वी. पर न्यूज आई कि पुरुष वेश में दो महिलाओं ने छुपकर मंदिर में प्रवेश कर डाला है। अखंड ब्रह्मचारी भगवान् अयप्पा को अपवित्र करने की साजिश रचती उन महिलाओं का तीव्र आक्रोश देखकर पुजारियों ने झटाझट मंदिर के पट बंद कर दिए।

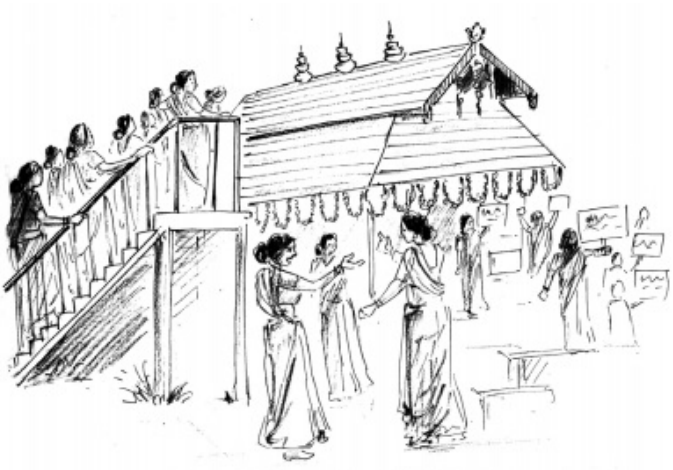

उधर चारों तरफ कोर्ट के आदेशों की अवहेलना को लेकर, बदलते समय में अधिकारों और आस्थाओं को लेकर जंग छिड़ी हुई थी। तभी किन्नरों के बीच से आवाज उठी, "यह मर्द और औरत के बीच के लफड़े हटाओ। मैं तो बस यह जानती हूँ, मौसी कि अगर हम मंदिर में प्रवेश कर जाएँगी तो किसी का क्या भला या क्या बुरा हो जाएगा?"

दूसरी बोली, "हमें तो वहाँ से धकेलकर ही निकाल दिया जाएगा।"

(जोश के साथ एक और किन्नर) तभी बोल पड़ा, "अरे, खा लेंगे धक्के और यों भी तो हम यहाँ-वहाँ धक्के ही तो खाते फिरते हैं।"

उत्तेजित होकर एक किन्नर बोला, "वाह! क्यों खा लेंगे धक्के भला! हम तो लोगों को दुआएँ देते हैं।" फिर हम तो महावारी से भी नहीं बैठती तो फिर हम अपवित्र कैसे हुईं?"

अभी ये बातें चल ही रही थीं कि बचे हुए किन्नर प्रश्नवाचक नजरों से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। तभी एक जागरूक किन्नर बोल उठा, "हम तो जाने कब से नबाबों और बादशाहों की खिदमत करती आई हैं। फिर यह रोक-टोक कैसी?"

और यह कहते हुए उसने भी विद्रोह का बिगुल फूँक दिया।

हार या कि जीत

वादी पक्ष का वकील, "मुल्जिमा दमयंती देवी पर आरोप है कि उसने तरबूज काटनेवाले चाकू से अपने पति पर एक के बाद एक कई प्रहार किए, जिससे मौकाए-वारदात पर उसकी मौत हो गई। अत: इस जुर्म के लिए उसे कड़ी-से-कड़ी सजा सुनाई जाए।"

बचाव पक्ष का वकील, "नहीं मॉयलॉर्ड, ऐसा नहीं है।···पति ने जब पत्नी को दुबारा किसी बाहरी आदमी के साथ देखा तो गुस्से में आकर उसने दमयंती देवी को वेश्या कह डाला। यही नहीं, जवान होती बेटी के लिए 'रंडी' शब्द का प्रयोग किया, जिससे आहत होकर अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने की खातिर उसने पति की हत्या कर डाली और रँगे हाथों पकड़ी गई। इस प्रकार से तो यह कतई इरादतन हत्या का केस नहीं बनता है।"···अभी वकील की बात खत्म भी न हो पाई थी कि उत्तेजना में भरकर वह चिल्लाई, "सामान समझ रखा है हर किसी ने मुझे! गाय के जैसे मुझे दान कर माँ-बाप स्वर्ग सिधार गए।" फिर जोर से विहँसी। "और भाई के लिए मेरी मन-बुद्धि का कोई महत्त्व ही नहीं था और पति? पति···?" फिर कसकर रोते हुए, "इनको हजार बार कहा, इलाज करवाओ, पर शरम-हया ऐसी कि बंदा मसका, नहीं तो नहीं मसका। भूख लगी थी, बाहर खा लिया तो मैं सबके सामने गुनहगार बन गई?" बिलखती हुए, "नहीं, मैं अपराधी नहीं हूँ, जज साहब!" फिर से न्याय की फरियाद करते हुए गुहार लगाई···"आप तो न्यायमूर्ति हैं साहब, आप ही बताएँ कि इन परिस्थितियों में मैं गुनहगार कैसे हो सकती हूँ?"

अगली तारीख तक का समय मुकर्रर किया गया और कोर्ट की कारवाई वहीं पर स्थगित हो गई। आज दमयंती देवी के केस के संदर्भ में ऐतिहासिक फैसला सुनाया जाना था।

आज दमयंती देवी चीख-चीखकर कह रही थीं, "आप ही बताइए जज साहब! एक बेपढ़े, बरोजगार, नामर्द के साथ जीवन कैसे काटा जा सकता है? वह भी तब, जब उसके हर शब्द में गाली हो?" क्रोध में भरकर बोली, "मार डाला साले को, एक ही झटके में सब खत्म। अब आप भी अपनी कारवाई खत्म कीजिए!" आँखों में किसी तरह के पश्चात्ताप का भाव न रखते हुए, "मुझे जो ठीक लगा, मैंने कर डाला, अब आप जो चाहे फैसला करो,

मुझे मंजूर है।"

फैसला होने से पहले दोनों तरफ से ढेरों तर्क-वितर्क तथा जिरह हुई, उधर से आवाज आई—"मोहतरमा दमयंती देवी पर इरादतन कत्ल का इल्जाम तो बिल्कुल नहीं बनता, कोई भी औरत 'रंडी' शब्द सुनकर, वह भी पति के द्वारा; गुस्से में आकर यह कदम उठा सकती है।" "हमें औरत की मान-मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए, पर यह भी सच है कि इस लोकतंत्र की रक्षा हेतु इस महिला को कानून हाथ में नहीं लेना चाहिए था, अत: आपको धारा··· ···के अंतर्गत··· ···सालों की सजा सुनाई जाती है; तभी अनायास कानून की देवी की बंद आँखों की पट्टी से आँसू की कुछ बूँदें नीचे जा गिरीं और उधर अदालत में बैठे अन्य लोगों की तरफ नजर उठाकर जज साहब कह रहे थे कि "आप सभी को अब जान लेना चाहिए कि जब दो वयस्क लोग अपनी मर्जी से संबंध बनाते हैं तो वह कृत्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता। सेक्स संबंधों की आजादी जितनी पुरुषों को है, उतनी ही महिलाओं को भी है।··· ···" ···फैसला अभी पूरा भी न हुआ था कि तभी···कोर्ट की सभी लाइटें गुल हो गईं और उधर न्याय की देवी के हाथ से तराजू गिर पड़ा। उधर जज की कुरसी के पीछे से किसी स्त्री के सुबकने की आवाजें आ रही थीं, मानो वह कहना चाहती थी कि "एक तरह से यह हार भी तो एक औरत की ही हार है।"

साहित्य और मीडिया

एक विवाह समारोह में मंच की ओर बढ़ते हुए एक साहित्यकारा व एक टी.वी. मालिक आपस में टकरा गए। लेखिका को स्पेस देते हुए टी.वी. मालिक बोला, "आइए-आइए, पहले आप," फिर चुटकी लेते हुए, "साहित्य को सदैव सबसे आगे चलना चाहिए।" लेखिका भी कुछ कम न थी, पलटकर झट से बोली, "पर आज के समय मीडिया को भी हमारे साथ चलना होगा, तभी हमारा अस्तित्व पूरी तरह से बच सकता है।" उस वक्त उसकी हाजिरजवाबी सुनकर पास खड़े सभी लोग जोर से हँस पड़े।

और सीढ़ियाँ चढ़ते हुए दोनों मंच की ओर साथ-साथ बढ़ गए।

वो लड़का

जो लड़कियों की आजादी का हिमायती है!

वो लड़का, अपनी बहन को कार व स्कूटी चलाना सिखाता है। उसके लिए ए.टी.एम. कार्ड बनवाता है। जो अपनी कमाई का दशांश उसे तब तक देता है, जब तक कि वह पूरी तरह से अपने पैरों पर खड़ी न हो जाए।

जो अपने बराबर बहन की शिक्षा तथा कॅरियर का पक्ष लेता है। जिसको किचन में घर की महिलाओं की सहायता करने में संकोच नहीं होता है, बहन के शट्र्स पहनने से जो विचलित नहीं होता और न ही बहन के लेट नाइट ड्यूटी से लौटने पर कोई टीका-टिप्पणी करता है; और तो और वह अपनी माँ से अच्छी पैरेंटिंग के गुण सीखता है। खुशी-खुशी माँ-बाप की प्रॉपर्टी में देना चाहता है अधिकार बहन को!

ऐसे ही लड़के चाहिए हमें इस देश में, इस दुनिया-जहान में, ताकि उड़ सकें हम बिना पंख फहराए ऊँचे आसमान में।"

वह लड़की स्कूल डिबेट में भावुकतावश बोले चली जा रही थी···तभी लड़कों की तालियों की तेज आवाज सुन मेरा मन आनेवाली सुंदर सदी की कल्पना कर खुशी से झूम उठा।

ब्लैक ऐंड व्हाइट

आ ई.आई.टी. के दीक्षांत समारोह के दिन गाउन पहने व डिग्री हाथ में लिये बच्चों में से एक स्कॉलर को आगे करते हुए कुलपति ने उससे शिक्षा मंत्री के सामने स्पीच देने के लिए कहा, स्टूडेंट ने बोलना शुरू किया—"आज मैं आप सभी के सामने एक कहानी सुनाने जा रहा हूँ। एक नन्हा सा बच्चा था, यही कोई साढ़े तीन-चार साल का।···क्लास में टीचर बॉडी पार्ट्स तथा कलर के बारे में पढ़ा रही थीं। उसकी बारी आने पर टीचर पूछती हैं···"टेल मी अनुज, व्हाट इज द कलर आफ आइज?" यह सवाल सुन वह बच्चा बड़ी गहराई से टीचर की आँखों में बिल्कुल उसी तरह झाँकता है, जिस तरह से वह पहले दिन अपनी नन्ही हथेलियों से माँ की पलकों को खोलते हुए बड़ी मासूमियत से माँ से पूछ रहा था···"माँ! तुम्हारी आँखों का कलर तो ब्लैक ऐंड वाइट है।" फिर शीशे में अपनी आँखों में झाँकते हुए, "और मेरी भी आँखों का कलर ब्लैक ऐंड व्हाइट है, पर टीचरजी कहती हैं कि द कलर आफ आइज इज ब्लैक। शो प्लीज टेल मी माँ! द कलर ऑफ आइज इज ब्लैक ऐंड व्हाइट?" उस वक्त उसकी प्रतिभा को देखकर माँ ने उसे अपने सीने से लगा लिया था और बोली थी, "हाँ बेटा! तुम ठीक कहते हो, आँखों का रंग सिर्फ काला नहीं, बल्कि काला और सफेद होता है।" बच्चे ने आगे सवाल किया, "माँ! तो फिर टेस्ट में क्या लिखूँ?" "यही कि कलर ऑफ आइज इज ब्लैक ऐंड व्हाइट।" बड़ी भावुकता के साथ वह अपनी बात कुछ इस तरह से कहता चला जा रहा था कि उसे उस वक्त अपने आसपास किसी के भी होने का एहसास न था। तभी तालियों की गड़गड़ाहट सुनकर एक क्षण के लिए वह सँभला, उस वक्त उस छात्र के होंठ कँपकँपा रहे थे, कुछ पनीली आँखें लिये हुए वह बोला, "पर सर! जानते हैं, उस दिन उस बच्चे को शरारती समझकर क्लास में सबके सामने सजा दी गई।" अंत में भर्राए गले से वो बोला, "और वह बच्चा मैं हूँ।"

कुछ शिकायती लहजे के साथ, आगे वह बोला, "सरजी! ऐसी है, हमारी शिक्षा-पद्धति और ऐसा है हमारा समाज। फिर से आज इस सम्मानित मंच पर आकर मैं आप सभी से पूछना चाहता हूँ कि आप लोगों के विचार से वास्तव में आँखों का रंग क्या होता है? मैं जानता हूँ कि यह बात छोटी सी है, पर यह भी सच है कि बच्चों के संपूर्ण विकास के लिए यह घटना एक बहुत बड़ी बाधा है। मैं फिर से आप से पूछना चाहता हूँ कि क्या छोटे क्लासेस से ही बच्चों का इस प्रकार से मूल्यांकन करना उचित है? क्या यह उन बच्चों का पूर्ण मूल्यांकन है?"

अंत में शिक्षा मंत्री की ओर मुखातिब होते हुए हाथ जोड़कर वह बोला, "सरजी! आपसे करबद्ध निवेदन है कि नई पौध के उचित विकास के लिए हमारी शिक्षा-प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन कर उसमें आमूलचूल परिवर्तन किए जाएँ, ताकि ये बच्चे कुंठाओं से मुक्त होकर अपने मस्तिष्क का अधिक-से-अधिक उपयोग कर देश और समाज के हित में बेहतर कार्य कर सकें।"

अभी बात ठीक से खत्म भी न हो पाई थी कि ढेरों हैट उसकी बात के समर्थन में उठ गए।

चौराहे पर खड़ी लड़की

चौराहे पर खड़ी लड़की अपना बाप खोज रही है। बताइए न आप, कहाँ खो गया है उसका बाप? वह लड़की भोली सी, आधी आँखें खोली सी, सुंदर है, मासूम है, जवानी के पहले पायदान पर है! पूछ रही है हर आते-जाते शक्स से, "क्या आप जानते हैं? मेरा बाप कौन है?"

खिड़की में से माँ पुकारती है उसे, पास आने को करती है इशारा; पर वह कहाँ माननेवाली है, उसे तो बस अपना बाप चाहिए।

उधर से गुजरनेवालों से मनुहार करती है, "अरे, कोई तो हो, जो बता दे मेरे बाप का नाम!" पर सारी भीड़ मौन है। वह फिर से पूछती है, "क्या आपमें से कोई नहीं जानता मेरा बाप कौन है?"

तभी रुककर भीड़ से सवाल करती है वह··· "देखो, सामने रेडलाइट एरिया में माँ रहती है मेरी···तो फिर होगा न बाप मेरा कोई?"

तभी सामने से आती धर्माचारियों की भीड़ देख वह रुक जाती है। पास आते ही बेचैन हो पूछ बैठती है, "आप ही बताइए न, यह कैसा धरम है और यह कैसा करम है, जो महापापी को बचा लेता है?" धर्माचारियों की भीड़ मौन है।

तभी चौराहे के उस पार से आती दिखाई देती है मजिस्ट्रेट की गाड़ी। पास आते ही पूछ बैठती है वह, "सरजी, कहाँ का न्याय है यह, जो असली अपराधी को छोड़ देता है?" वह सवाल करते हुए गाड़ी के पीछे भागती है, पर गाड़ी उससे बहुत आगे निकल जाती है।

तभी खिड़की में से माँ उसे फिर से पास आने का इशारा करती है, पर वह कहाँ माननेवाली थी! आते-जाते हर जवान, बूढ़े और प्रौढ के चेहरे को बारीकी से पढ़ने का कुछ इस तरह से प्रयास करती है, मानो वह उनमें से किसी में अपना बाप ढूँढ़ रही हो।

उसको इस तरह से घूरते हुए देखकर एक बुड्ढा कसकर चिल्लाया, "ऐ लड़की! क्या बकवास करती है?" तभी किनारे खड़े अमलताश के पेड़ के नीचे बनी बेंच पर अधलेटा प्रौढ कुछ इस तरह से उछला कि मानो पास पड़ी

डंडी से उसे पीट ही डालेगा। पर वह अभी भी अपने बाप की रट लगाए चली जा रही थी।

मामले को बिगड़ता हुआ देख सामने से माँ और उनकी सहेलियाँ चिल्लाईं और वह न चाहते हुए भी अड्डे की सीढ़ियों की ओर बढ़ गई। उधर से बराबर धमकी भरी आवाजें आ रही थीं, "खबरदार, जो फिर कभी चौराहे की ओर दिखी!"

सीढ़ियों पर से वह लड़की तेज आवाज में चिल्लाई—"आऊँगी कैसे नहीं? आऊँगी, बिल्कुल आऊँगी! आखिर आपमें से ही तो न जाने कितने मेरे मामा, नाना, ताऊ, चाचा, मौसा या फूफा हैं।"

गरजो नहीं, बरस जाओगे

गड़गड़ाते हुए बादल ने मचलती हुई हवाओं से कुछ गुरूर के साथ कहा, "ओ बंसती हवाओ! जरा इठलाना छोड़कर देख मुझे, तू भटकती फिरती है इधर-उधर और मैं! मैं बैठा हुआ हूँ आकाश के सबसे ऊँचे सिंहासन पर।" उसे फिर से गड़गड़ाते हुए देख कुछ खिल्ली उड़ाता सा बोला, "फिर तेरी-मेरी भला क्या तुलना?" कुछ ज्यादा गर्व के साथ वह बोला—"ये चाँद, ये तारे, सभी तो मेरे आँचल में दुबके रहते हैं, और तो और यह आकाश भी तो मेरी पीठ का सहारा लेकर ही तो ऊपर की ओर तना है।" कुछ और अधिक गुरूर के साथ वह आगे बोला, "मैं चाहूँ तो धरती को भिगो दूँ या चाहूँ तो सुखा दूँ और चाहूँ तो डुबो दूँ! मेरे सामने तू भला कहाँ टिक सकती है?"

बहुत देर से बादल की अहंकार भरी बातों को सुनते हुए···एक क्षण को वह घबराई और अगले ही क्षण उसे अपनी ताकत का अंदाजा जो हुआ तो जा भिड़ी बादलों से। हवा का यह रुख देखकर अब तो बादल पानी-पानी हो चला था, बूँदों का रूप धारण कर धरती पर जो पड़ा तो उसका अस्तित्व (वजूद) वहीं पर विलीन हो गया!

पर देखो तो! न तो चाँद टूटा, न तारे मचले, न आकाश टूटा, न सूरज रोया, सबकुछ वैसा-का-वैसा ही था। सच तो यह था कि बादल के हटते ही अपनी रश्मियों को सीने से लगाए आज सूरज कुछ ज्यादा ही चमक रहा था, और तो और उसका साथ देते हुए आकाश भी मुसकरा उठा था।

इश्क और प्यार

पत्नी कुछ रोमांटिक मूड में पति से बोली, "डियर, यह बताओ, इश्क और प्यार में क्या अंतर होता है?"

मोबाइल पर मैसेज चेक करता हुआ थोड़ी बेपरवाही से पति बोला, "अपने दिल से पूछो!"

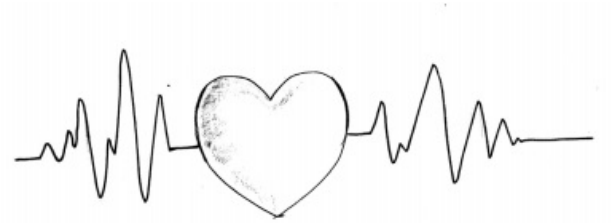

पत्नी बोली, "पूछा था, कहता है कि फालतू की बातों के लिए मेरे पास समय नहीं है। मेरा काम खून लाना और ले जाना है। खाली-मूली मेरी खोपड़ी न चाटा कर!"

वाह जनाब

कार हाइवे पर तेजी से दौड़ी चली जा रही थी। जाड़े की सुबह, मित्रों का साथ। सूरज देवता को प्रगट होने में अभी समय था। बदन गरम करने के लिए उन्हें चाय की तेज तलब हो रही थी। उधर कार हाइवे पर अपनी पूरी रफ्तार के साथ दौड़ी चली जा रही थी।

पौ फटते ही सड़क के नुक्कड़ पर उन्हें एक चायवाला दिखाई दिया। स्टोप पर चढ़ी खौलती चाय देखकर उनकी चाय पीने की चाहत और भी बढ़ गई।

तभी···छोटे-छोटे काँच के गिलासों में चाय बनकर आ गई। तभी यह क्या···? एक सुट्टा, फिर दूसरा सुट्टा लगाने के बाद मजा नहीं आया न?" इससे पहले कि कोई कुछ कहता··· ···यह सुन ··· ··· चायवाले ने खौलती हुई चाय का स्टोव कुछ धीमा किया; फिर उसकी बात को बीच में काटते हुए झट से बोल पड़ा···"भैयाजी! बुरा न मानो तो एक बात कहें, मजा किसी का गुलाम थोड़े न है। मजा लेकर पीओगे तो मजा आएगा!"

अब तो अनीस बिना कोई जवाब दिए उसकी ही तरफ देखे चला जा रहा था।

भला कहता भी तो क्या, कुछ बातों के जवाब थोड़े ही न होते हैं।

तूफान के बाद

सच पूछो तो माइग्रेन गुजर जाने के बाद मुझे कभी उसकी याद ही नहीं आती, लेकिन उसके होने पर हमेशा दिमाग का एक हिस्सा उससे छिटककर दूर खड़ा हो जाता है और भौचक होकर देखता है कि भीतर मचा यह धमाल आखिर क्या है? वह देखता है कि कोई भूकंप आया है, लावा उठ रहा है, नसें भीतर से चरमरा रही हैं, शिराएँ-धमनियाँ सब हिल उठी हैं, शिराओं में रक्त ऐसे बह रहा है, जैसे कोई अस्पताल के गलियारे में भागता है अपने मरीज को बचाने के लिए, जैसे कोई तूफान हो। तेज लहरें सबकुछ बहा ले जाने की जिद पर अड़ी हैं—मांस, रक्त, शिराएँ, धमनियाँ, सब खुद को बचाने की कोशिश में आपस में उलझी पड़ी हैं। मरना नहीं चाहती हैं वे। उन्हें उम्मीद है कि कुछ समय बाद तूफान गुजर जाएगा और वे सभी बच जाएँगी, अगर एक-दूसरे का हाथ थामे रहीं तो।

तभी दवाइयाँ दिखाती हैं अपना असर और तूफान शांत पड़ जाता है। शिराओं की बेचैनियाँ कम होती हैं, नसें थककर सो जाती हैं, रक्त पहले की तरह आहिस्ता से बहने लगता है। धीरे-धीरे सब स्थिर हो जाता है।···फिर से मन करता है रोशनी के पास जाने को और कुछ गुनगुनाने को, लेकिन सोचती हूँ, 'कई बार तूफान गुजर जाने के बाद वह आधा सिर, जो तकलीफ से गुजरा होगा, क्या पूछता होगा दूसरे हिस्से से? यही न कि जब मैं डूब रहा था, तब तुम कहाँ थे?'

मिक्स पैक

उस दिन मैं मॉल में अकेले ही घूमने निकल पड़ी। घर में बोर होने से तो अच्छा था कि कहीं घूम ही लिया जाए, तभी सामने बने एक भव्य स्टोर के बाहर चमचमाते हुए अक्षरों में लिखा हुआ पाया—'हैप्पिनेस पर 100 प्रतिशत छूट'।

लगता है कि 'यह ग्राहकों को पागल बनाने का कोई नया धंधा है।' फिर भी मन में उठी जिज्ञासा ने मुझे मॉल में अंदर घुसने को विवश कर दिया, तभी अंदर क्या देखती हूँ कि सामने संतुष्टि का बड़ा सा काउंटर लगा हुआ है और उस पर 90 प्रतिशत की छूट का वायदा लिखा था, कुछ और आगे बढ़ा तो ज्ञान, बुद्धि, स्वास्थ्य, समृद्धि, शांति, कामयाबी जैसे छह और काउंटर लगे हुए थे।

यह सब देख मैं चकराई। 'अजीब स्टोर है यह!' यह सोचते हुए मैं कुछ और आगे बढ़ी, चारों तरफ सुवासित माहौल था; पर वहाँ ग्राहक कोई खास दिखाई नहीं दे रहे थे।

उस वक्त मैं सोच रही थी कि इतनी बेशकीमती चीजें, पर खरीददार कोई खास नहीं! हाँ, ज्ञान और बुद्धि के काउंटर पर जरूर कुछ लोग दिख रहे थे। कामयाबी! ओ हाँ! उसके पीछे तो लाइन ही लगी हुई थी। कुछ बुजुर्गवार स्वास्थ्य के काउंटर पर भी खड़े थे। पर शांति, संतुष्टि और खुशी के काउंटर अपनी नियति पर आँसू बहा रहे थे।

क्या कहा मैं? ओ हाँ, मैं तो इस तरफ से उस तरफ, उस तरफ से इस तरफ, बस चिड़ियों के जैसी फुदक भर रही थी। करती भी क्या? कभी ये लेने का मन करता तो कभी वह लेने का जी करता। शायद जवानी का तकाजा ही कुछ ऐसा होता है कि मन कहीं एक जगह ठहरता ही नहीं। मन किया कि चलो 'हैप्पीनेस' ही खरीद ली जाए। काउंटर पर पहुँची तो एक सेल्सगर्ल ने मुझे किनारे ले जाकर मेरे सीने पर हाथ रखकर कहा, "मैडम, बेवजह ढूँढ़ रही हैं खुशियाँ, ये तो यहाँ पर हैं।" उस वक्त मुझे अपनी मूर्खता पर कुछ शर्म आ गई।

मन कन्फ्यूज्ड था, क्या खरीदूँ, क्या न खरीदूँ? आँखें कभी इधर देख रही थीं तो कभी उधर देख रही थीं, और मन था कि कहीं एक जगह टिक ही नहीं पा रहा था। तभी···अंदर से एक आवाज आई—'कुछ एक खरीदने से बेहतर है कि सबका मिक्स पैक ही क्यों न ले लिया जाए?' मुझे आइडिया अच्छा लगा और कुछ ही क्षणों बाद मैं ज्ञान, बुद्धि, स्वास्थ्य, शांति, संतुष्टि, इज्जत, सफलता का मिक्स पैक लिये स्टोर के बाहर खड़ी मुसकरा रही थी।

तभी कानों में घंटी बजने की धीमी सी आवाज सुनाई दी। उचककर देखा तो क्या देखती हूँ कि सिरहाने पर रखा मोबाइल का अलार्म बज रहा है।

शर्म न हया

उस दिन किसी बात पर फिर से भाई से आरग्यूमेंट करते हुए श्रद्धा को देखकर दादी चिल्लाई, "आजकल की लड़कियाँ भी न, शर्म-हया बेच खाई हैं! कुछ तो शर्म करो! लड़कियों का लड़कों से यों मुँह लड़ाना अच्छी बात नहीं है।"

वैसे मामला कुछ खास न था, उस दिन भाई के घर लेट आने पर श्रद्धा उसे सबक सिखाने के लिए कुछ ज्यादा ही बोल गई थी। पर भाई भी कुछ कम न था, छोटा होते हुए भी उस वक्त बोले चला जा रहा था।

तभी फिर से दादी की आवाज सुनाई दी, "शर्म-हया तो लड़कियों का जेवर होता है, जेवर। मान भी जाओ अब!"

यह बात सुन अबकी दफा उससे रहा न गया, माँ की तरफ मुँह करके बड़े आत्मविश्वास के साथ बोली, "जरा गूगल में सर्च करके तो देखो कि शर्म को अंग्रेजी में क्या कहते हैं? ओ हाँ, 'ऐंबरैसी'! तो छोटे भाई को उसकी गलतियों के लिए टोकना ऐंबरैसी का काम है?" यह कह भुनभुनाती हुई वह अपने कमरे में चली गई।

उधर आँगन से अभी भी दादी की आवाजें आ रही थीं। जबकि पिछली और अगली पीढ़ी के बीच खड़ी माँ दादी-पोती के बीच कैसे सेतु-बंध बनाया जाए, इस बात पर मन-ही-मन विचार कर रही थी।

लेखिका

इंटरव्यू के दौरान लेखिका से रिपोर्टर ने पूछा, "मैडम, बड़ा विरोधाभासी व्यक्तित्व है आपका—एक तरफ साहित्य-साधना और दूसरी तरफ ग्लैमर का साथ, एक तरफ व्यापार और दूसरी तरफ अनाथ बच्चों को पढ़ाने की आतुरता। आवाज में मिठास, परंतु विचारों में दृढ़ता। मन में करुणा, परंतु अनुशासनहीनता पर क्रोध भी कम नहीं आता है आपको। जरा हमारे पाठकों को बताइए कि आखिर आप खुद की नजर में क्या हैं?

कुछ संजीदा होकर वह बोली, "कैसे समझ सकेंगे आप कि मेरी जिंदगी की कचहरी में न मेरा कोई वकील था और न ही कोई जज। बस, कुछ यों समझिए कि अबतक अपने हादसों की मैं अकेली ही गवाह रही हूँ। इतने कम समय में इतनी बड़ी जिंदगी की दास्ताँ कैसे सुना दूँ आपको? अगर मुझे समझना है तो आपको मेरी आत्मकथा 'बस यों ही' पढ़नी होगी, जिससे आपको मेरे बारे में बहुत कुछ पता चल जाएगा।" यह कहती हुई वह चुप हो गई।

गुस्ताखियाँ

इश्क का क्या कसूर—कब, किसको, कहाँ हो जाए? यही हाल तो कुछ आँखों का था। उसको मोहब्बत हो गई थी मोबाइल से। अब तो रात-दिन वह उसी के सपने देखती हुई उसी में समाई रहती बाहर की दुनिया से कुछ-कुछ बेपरवाह सी; और तो और वह अपना चेहरा भी देखती तो मोबाइल की निगाहों से देखती। दिनभर टकटकी लगाए बस उसे ही निहारा करती।

आँखों की यह हरकत देखकर दिन-रात उसके साथ रहनेवाली होंठों की हँसी को बहुत गुस्सा आया और 'जा तू रह इसी के साथ' कहकर वहाँ से रूठकर कब चली गई, किसी को कुछ पता भी नहीं चला, और तो और उसके संगी-साथी दाँत भी, जो कभी खिलखिलाकर बाहर निकल आना चाहते थे, उनको भी आँखों की इस गुस्ताखी पर बड़ी कोफ्त हुई और वे भी हँसी के साथ हो लिये। वह हँसी, जिसके कारण कभी हँसते-हँसते लोगों के पेट में बल पड़ जाया करते थे; जाने कहाँ उड़न छू हो गई। शायद 'इश्क' और मुश्क की कारीगरी से वह भी अजिज आ गई थी।

आखिरकार आँखों की इस कारगुजारी से बाज आकर पलकों ने उस पर और कड़े पहरे बिठा दिए। पर आँखें तो आँखें थीं, कब, कहाँ, किसकी माननेवाली! लड़ गईं तो लड़ गईं। पलकें जातीं तो जातीं कहाँ फरियाद लेकर? जब किसी से आँखों की इन गुस्ताखियों की शिकायत करनी चाही; पर यह क्या, यहाँ तो दोस्त-यार, सगे-संबंधी सभी की आँखें तो मोबाइल से पेच लड़ाने में लगी हुई थीं। आखिरकार हारकर, किसी से बिना कुछ बताए खुशी एक दिन जाने कहाँ गायब हो गई? लोगों ने उसे खोजा, बच्चों की हँसी में, नदियों के किनारे, बाग में, बगीचों में, पर वह न तो मिलनी थी और न ही मिली।

तभी किसी ने सलाह दी, "जरा पता तो करो, कहीं यह मोबाइल की बदमाशियाँ तो नहीं हैं?" आइडिया सच निकला···दुष्ट मोबाइल ने ही तो उस प्यारी सी हँसी, जिसको देखते ही सबकी आँखों में चमक आ जाया करती थी तथा दाँत अपनी श्वेत आभा बिखेर चमक उठते थे और होंठों पर गुलाब के फूलों की-सी लाली छा जाती थी, उसको तो उस शायराना-आशिकाना मोबाइल ने जाने कितने मैसेजेस का लालच देकर अपरहण कर लिया था। उसकी गिरफ्त से छूटने के लिए तड़पती हँसी छूटे तो भला छूटे कैसे?···हाथों के अँगूठे ने भी तो आँखों का साथ देते हुए मोबाइल को कुछ इस तरह कसकर दबा रखा था कि उसकी कैद से उसका भागना मुश्किल हो रहा था।

छिलके

प्याज का छिलका आज बहुत दु:खी था। तभी उस नए-नवेले छिलके ने अपना दु:ख व्यक्त करते हुए कहा, "यह क्या, यहाँ तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने लगे! मैं तो गरीबों के आँसू पोंछना चाहता था, डोसा, आलू पराँठे, मजदूर की रोटी और सलाद की शान बढ़ाना चाहता था, पर यहाँ तो बाहर आते ही सबकुछ उलट-पुलटा ही हो गया, अब तो मैं अपने तथा औरों के हित के लिए अवश्य आवाज उठाऊँगा।"

छिलके की यह बात सुन एक बड़े प्याज ने डपटकर कहा, "मौके की नजाकत को समझ···सियासी मोहरा बनकर तुम क्या करोगे? (कुछ तेज आवाज में वह बोला)···जवानी के बहाव में सब अच्छा लगता है यारो! पर जब बह जाओगे तो कहाँ गए, पता भी न चलेगा।"

तभी छिलके को समझाता हुआ बोला, "सच तो यह है बच्चे! कि गरीब की थाली से गायब होने का गम मुझे भी कुछ कम नहीं सता रहा है, फिर से थाली से मिलने की तड़प के कारण मेरे आँसू रोके नहीं रुक रहे हैं।" "इस पर बताओ, मैं क्या करूँ?"

तभी डलिया में पड़े अनुभवी सफेद मूँछोंवाले प्याज ने समझाना चाहा, "किस-किस के आँसुओं की परवाह करेगा रे पगले! कराहते लोकतंत्र के आँसुओं की या फिर कर्जदार किसानों की? या कि असुरक्षित बेटियों की? गिरते-सँभलते रिश्तों के भार को क्या तू अकेला सँभाल पाएगा? बता पुत्तर, बता?"

गहन संवेदना के कारण बात तो छिलके को कुछ आधी-अधूरी ही समझ में आई थी, पर अब तक वह समझ चुका था कि ज्यादा भावुकता ठीक नहीं है। फिर क्या था, कुछ समय बाद वह छिलका···प्याज से चिपका, सब्जी की टोकरी में पड़ा मुसकरा रहा था।

अंदर-बाहर

"यार प्रतीक, तुमने अपने शहर में स्टार्ट-अप शुरू करके बड़ा अच्छा किया। जो ग्रोथ अपने बिजनेस में है, वह नौकरी में कहाँ? फिर खाना-पीना, रहना—सब फ्री, कोई टेंशन नहीं! इससे अच्छी जिंदगी भला क्या हो सकती है? पर यार!"···पलटकर सहज ने कहा, "पर क्या?" "क्या तुम अपने काम से खुश नहीं हो? जबकि घर वापसी का डिसीजन तुम्हारा अपना था। फिर किंतु-परंतु क्यों?"

"कभी-कभी लगता है, सहज कि ये सारे झगड़े-झंझट झेलने से अच्छा था कि किसी मैट्रो सिटी में नौकरी ही करता रहता। यहाँ पर तो बस, सबको 'घर की मुरगी दाल बराबर' लगती रहती है। फिर इतनी हाई एजूकेशन का क्या अर्थ है मेरे लिए?"

उसकी पीठ थपथपाते हुए, "जीवन संघर्ष है दोस्त! वह चाहे तुम्हारे साथ हो या फिर मेरे साथ।" आगे सहज बोला, "मुझसे पूछ, किराए के एक कमरे में बता कब तक रहूँ? घर नहीं तो शादी नहीं, माना कि लोन पर घर ले भी लिया तो कम-से-कम दस सालों तक किस्तें भरते रहो, फिर बच्चे के लिए प्लान करो।" आगे वह बोला, "जो कुछ तुम्हारे पास है, तुम उससे खुश नहीं और जो कुछ मेरे पास है, मैं उससे खुश नहीं। तुमको नहीं लगता है कि हम 'सोच' अधिक और 'जी' कम रहे हैं? इस तरह से तो हम पागल ही हो जाएँगे!"

फिर कुछ भावुक होते हुए···"दोस्त, अपनी सीमाओं में खुश रहना सीखो। शुक्र मनाओ कि तुम अपने शहर और अपने घर में रह रहे हो, जबकि मुझसे पूछो यार, कितना मिस करता हूँ मैं अपने लोगों और अपने घर को। सच पूछो तो एक अदद अपने मकान की चाहत लिये आजकल मकान खुद ही मेरे अंदर रहने लगा है।" यह कहते हुए वह चुप हो गया।

दरख्त पर बैठी चिड़िया

मैंने दरख्त पर बैठी चिड़ियाँ से सवाल किया, "क्यों बार-बार लौटकर यहीं पर आ बैठती हो? यहाँ न तो फल है, न फूल और न ही पत्तियाँ; जबकि विशाल आकाश तुम्हारी प्रतीक्षा में कब से आँखें बिछाए खड़ा है, और न जाने कितने हरे-भरे पेड़ तुम्हें अपने पास बुला लेना चाहते हैं। सच पूछो तो तुम्हारे सपने पूरे होंगे इन लहलहाते हुए खेतों में!" तभी मैंने आगे कहाँ, "फहराओ अपने सुनहरे पंख और उड़ जाओ सूरज-चाँद-सितारों से भरे अनंत आकाश की ओर।"

मेरी यह बात सुन वह चिंचियाई, मानो कहना चाह रही थी, "इसी पेड़ पर तो मेरी न जाने कितनी स्मृतियाँ बसी हैं। मैंने अपने बच्चों को एक-एक दाना चुगाया था इसी की शाखों पर।" कुछ नम आँख लिये वह बोली, "जुड़ाव है मुझे इसकी एक-एक शाख से और प्यार करती हूँ मैं इसे।" सवालिया निगाहें लिये मैंने पूछना चाहा, "वह तो कल की बात थी, पर आज तो वह सूखा ठूँठ हो चला है, क्या करोगी यहाँ अकेली रहकर?" मैंने आगे समझाना चाहा, "जमाने की यही चाल है···जा उड़ा जा अपने सपनों की ओर; पर तभी मैं उसकी आँखों की ओर देखकर सिहर उठती हूँ। मानो वह पूछना चाह रही थी मुझसे कि "खुद के बारे में क्या खयाल है?" और मैं चुप हो गई।

चाय का प्याला

प्यार और अपनापन जीवन की दो बहुत बड़ी जरूरतें, पर जब यही जरूरतें जरूरत से ज्यादा बढ़ जाती हैं तो व्यक्ति के सामने किस तरह की समस्याएँ आकर खड़ी हो जाती हैं!" अरे, यह मैं क्या सोचने लगी? "मुझे तो अभी 'मानव व्यक्तित्व का विकास' चैप्टर खत्म करना था।" चारू खुद-ब-खुद बुदबुदाई। वैसे भी वहाँ उसकी बातें सुननेवाला था भी कौन? जो प्यार से हाथ पकड़कर कहता कि बहुत हो चुका चारू, इतना भी क्या पढ़ना-लिखना; पर वह जानती थी, उसे यह वियोग अभी कम-से-कम डेढ़ सालों तक और झेलना है।

पढ़ते-पढ़ते अचानक चारू उठी और किचन में जाकर अपने लिए चाय बनाकर ले आई तथा खिड़की में बैठकर अस्त होते हुए सूरज को देखने लगी। उस वक्त उमंग का कनाडा जाना उसे बहुत सता रहा था, पर वह जानती थी कि आज की तपस्या कुछ समय बाद उसके जीवन को खुशियों से भर देगी। फिर माँ ने भी तो यही चाहा था उसके वास्ते, तभी तो ग्रैजुएशन के तुरंत बाद जैसे ही उसने मनोविज्ञान विषय लेकर पोस्टग्रैजुएशन करना चाहा, तब पढ़ाई के बीच में ही माँ और पापा ने उसकी शादी उमंग के साथ पक्की कर दी। हाँलाकि वे जानते थे कि उमंग एक एन.आर.आई. है और उसकी एजुकेशन कंप्लीट होने में अभी कम-से-कम दो सालों की देरी थी; लेकिन इतना अच्छा घर और वर इतनी आसानी से भी तो नहीं मिलता है। मौका हाथ में था, अत: चारू की सगाई उमंग के साथ हो गई। चारू को आज भी याद है, किस तरह माँ ने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर इशारों-इशारों में समझा दिया था कि तुम्हें मेरी तरह गुलामों की नहीं, किसी रानी की तरह जिंदगी काटनी है, लड़का बहुत ही खुले विचारों का है। उस घर में उसे मान-सम्मान, धन-दौलत सभी कुछ तो मिल रही थी, जिसकी चाहत हर लड़की करती है।

चाय पीते ही चारू को विचित्र सी बेचैनी हुई और वह टॉयलेट की तरफ भागी, उसे समझ में नहीं आ रहा था कि आज उसे क्या हो गया है! कुछ मितली सी हुई और फिर सब शांत। चारू ने सोचा, शायद चाय पीने के कारण ऐसा हुआ होगा, पर यह क्रम बराबर जारी रहा। दूसरे दिन उमंग से मोबाइल पर बात करते समय उसकी तबीयत फिर से खराब होने लगी, घबड़ाकर उमंग ने शहर से कुछ दूर पास ही के गाँव में रहनेवाले अपने माँ-बाऊजी को फोन कर दिया, वे भी बहू की ठौर लेने उसी दिन शहर पहुँच गए। कुछ गड़बड़ जान माँ ने डॉ. निर्मल खत्री से संपर्क किया। सारी जाँच-पड़ताल के बाद वे बोले, "शी इज प्रेगनेंट ऐंड वेहर इज योर सन? डोंट लिव हर अलोन।" माँ-बाबूजी को आए अब तक पंद्रह दिनों से ऊपर हो चले थे।

चारू जानती थी कि आखिर ऐसा कितने दिनों तक चलता, खानदानी जायजाद को ऐसे छोड़ा भी तो नहीं जा सकता था, गाँव-देहात का मामला था, कोई कब्जिया ले तो एक और मुसीबत खड़ी हो जाए। अभी तो उमंग भी ठीक से सेटल नहीं हो पाया था, फिर बिना गंगाघाट-पूजापाठ के अजनबियों के बीच उनका मन भी तो नहीं लग रहा था। अब तक चारू की तबीयत भी कुछ सुधर रही थी; उसने माँ-बाऊजी को आग्रहपूर्वक गाँव बिदा किया।

उनके जाने के बाद चाय का प्याला हाथ में लेकर वह ईजीचेयर पर पसर गई। उस समय वह सोच रही थी कि जब माँ-बाऊजी ने हमें हमारी मर्जी की जिंदगी जीने का अधिकार दिया है तो हमारा भी फर्ज बनता है कि उनकी जिंदगी में कोई दखलंदाजी न करें; पर यह क्या, कुछ दिनों बाद उसकी तबीयत फिर से गड़बड़ होने लगी, अबकी बार उसने अपनी मम्मी को बुलाना चाहा, पर वह जानती थी कि मम्मी के यहाँ आने के नाम भर से किस तरह से पूरा घर ना-नुकर करेगा, जैसे वह कोई इनसान न होकर बँधुआ गुलाम हो, जो सपने भी देखती तो पति की आँखों से। पति की खुशियाँ ही उसकी खुशी और गम ही उसके गम थे। जिसकी इच्छा-अरमान सब उसका परिवार और

पति था, पर बदले में उसे क्या मिला? आहिस्ता-आहिस्ता बढ़नेवाला अवसाद। उस पर उसके लाख मना करने पर भी पापा यह मानने को तैयार नहीं थे कि उनकी बेरुखी तथा उसका अव्यावहारिक व्यवहार ही माँ के डिप्रेशन का कारण है। हो सकता है कि पापा इतने गलत भी न हों, शायद मम्मी के पूर्ण समर्पण ने उन्हें इतना सब सोचने का मौका ही न दिया हो!

'क्यों मेरे कारण घर में मम्मी-पापा के बीच तनाव हो,' यह सोच उसने कुछ समय यों ही काट लेना चाहा, पर कष्ट और विरह की रातें काटना इतना भी तो आसान न था। अचानक एक दिन उसे कुछ याद आया, उस दिन छमाही इम्तिहान से कुछ दिन पहले एक व्यक्ति पतारा सर से किसी अच्छे पी.जी. या होस्टल का पता पूछ रहा था। उस समय तो उसने इस बात पर ध्यान न दिया, पर आज उसे लग रहा था कि यदि घर के पिछले हिस्से में किराएदार के रूप में वह रह जाए तो कुछ समय के लिए उसकी समस्या का समाधान हो सकता है। फिर आदमी भी तो शरीफ लग रहा था। उसने अपनी यह बात सर को बताई और अगले ही हफ्ते किराएदार के रूप में जयंत उनके सामने हाजिर थे। चारू ने पूछना चाहा, "और आपकी मिसेज?" जयंत खामोश था, कुछ देर रुककर बोला, "मेरी पत्नी नहीं है?"

असंमजस्य में पड़ी चारू बोली, "और उस दिन वह जो आपके साथ थी?"

"उसे तो मैं मनोविज्ञान की ट्यूशन देता हूँ, उस दिन फरदर स्टडीज के लिए वह मेरे साथ सर से मिलने आई थी।"

निर्णय तो खुद चारू ने लिया था तो भुगतना भी खुद को ही था। अपने इस बेवकूफी भरे फैसले के लिए वह कहे तो किससे कहे? पर वह जानती थी कि उमंग बहुत खुले विचारों का आदमी है और उसके इस निर्णय पर उसे कोई आपत्ति न होगी। अकेले घर में जब तोता-मैना और बिल्लियों के बीच में भी आपसी दोस्ती हो जाती है, फिर वह तो एक इनसान था। अभी तक जयंत का सारा सामान यों ही बिखरा पड़ा था, मानवता के नाते चारू ने उसे चाय का ऑफर दे डाला।

सुबह का समय था, आज दोनों बरामदे में केन की कुरसियों पर आमने-सामने थे। "चारूजी, आपने अपने घर पर मुझे रखने की बात क्यों सोची?" अचानक चारू को एक आवाज सुनाई दी। चारू ने सहज भाव से उत्तर दिया, "किसी को तो रखना ही था। बस यही कारण?" सहसा चारू को अपने चेहरे पर कुछ गरमाहट महसूस हुई, देखा तो वह शख्स टकटकी लगाए उसे देखे चला जा रहा था। देखने में सौम्य, सुंदर जयंत की सज्जनता उसे आकर्षित कर रही थी, तभी वह बोली, "अच्छा, अब कॉलेज जाने का समय हो गया है। मैं चलती हूँ।" सबकुछ समझकर भी न समझने का बहाना कर वह उठ खड़ी हुई, फिर न चाहते हुए भी जयंत को उठना पड़ा।

अकेली नदी भी जाने किन-किन राहों को पार करके बहती है, फिर वह तो एक औरत थी। वेग तो वह क्या जाने, उसने तो ठीक से बहना भी न सीखा था। पढ़ाई पूरी कर कनाडा में बसने का सपना न होता तो कब की वह वहाँ से ससुराल या फिर पति के पास जा चुकी होती, पर अब वह क्या करे? गाँव में मन नहीं लगता और कनाडा का वीजा, पासपोर्ट बनने में अभी समय था। जाने कौन सी अदृश्य शाक्ति आज उसे जयंत को चाय पर फिर से बुलाने को विवश कर उठी। चाय पीते हुए शिष्टाचारवश उसने जयंत के बारे में और भी बहुत कुछ जानना चाहा···और फिर एक-एक कर निरपराधी होते हुए भी किस तरह पत्नी के षड्यंत्र के कारण पिछले पंद्रह सालों से वह दहेज माँगने तथा पत्नी को प्रताड़ित करने के मुकदमे में फँसा है, जबकि सच्चाई यह है कि पत्नी का रिश्ता किसी और के साथ पहले से ही था और आज वह मर्द होकर भी दहेज की बेदी पर बलिदान हो गया है। उसने बताया कि अब तो उस घर में जाने को मन भी नहीं करता। वह घर-द्वार होते हुए भी पत्नी के कारण बेघर हो गया है और अब तो

केवल अपनी एजुकेशन का ही सहारा है। अनुभव ने इतना तो सिखा ही दिया है कि मैं लोगों के व्यवहार की काउंसलिंग कर कुछ ज्यादा कमा सकूँ।

चारू विस्मृत निगाहों से उसे देखे चली जा रही थी। वह सोच रही थी कि एक तरफ उसके पापा, जो माँ पर शासन कर कितने गर्व का अनुभव करते हैं और दूसरी तरफ दहेज दानव की गिरफ्त में जकड़ा वह निरपराधी युवक! एक बार तो चारू को उसकी बातों पर विश्वास ही न हुआ। वह सोच रही थी कि किस प्रकार इस पुरुष प्रधान समाज में कैसे कोई मर्द सताया जा रहा है? नहीं, यह मुझे इमोशनली ब्लैकमेल कर मुझसे कुछ पाना चाहता है। न चाहते हुए भी चारू की निगाहें जयंत पर जा पड़ी, पर उसकी आँखों के लाल डोरे सारी सच्चाई बयाँ कर रहे थे, अब तो झूठ की भी कोई गुंजाइश दिखाई नहीं पड़ रही थी।

तब से उनका एक साथ चाय पीने का यह सिलसिला चल निकाला। एक दिन अचानक चाय के समय चारू को फिर उलटियाँ शुरू हुईं। थोड़ी देर बाद सब शांत था। उस दिन जयंत से न रहा गया, बोला, "चारूजी, एक बात कहूँ, आप बुरा तो नहीं मानेगी? आप बहुत अच्छी हैं। काश कि मेरी पत्नी भी आपके जैसी होती, किस तरह से आपने परिवारवालों तथा अपनी खुशियों के बीच सामंजस्य स्थापित किया हुआ है, रियली यू आर ग्रेट।" चारू क्या कहती, वह चुप थी।

एक अच्छा साथी पाकर जयंत की उदासी भी अब मन-ही-मन मुसकराने लगी थी। पर जब भी चारू जयंत के अच्छे व्यवहार तथा अपने प्रति केयरिंग नेचर को देखती, उसको पापा द्वारा मम्मी के प्रति किए गए व्यवहार की याद हो जाती। वह मन-ही-मन सोचती, 'माना उम्र के लिहाज से जयंत पापा से छोटे, पर मम्मी के तो नजदीक ही रहे होंगे। दोनों निरपराधी लोग किस तरह तनावग्रस्त होकर अपनी-अपनी जिंदगियाँ काट रहे हैं। काश, मेरे पापा ऐसे ही होते! क्या यह सब भाग्य है या कर्म? या फिर होनी, जो समय-बेसमय, कभी भी किसी को अपना खेल दिखा जाती है?'

एक दिन गीले बालों को झाड़ती हुई जब वह अपने कमरे से बाहर निकल रही थी कि अचानक जयंत ने धीरे से पुकारा—"चारू, ओ चारू! यह तुम्हारे गालों पर पड़ी लटे तुम्हारे रूप को और भी बढ़ा देती हैं।" अपनी प्रशंसा सुन मन-ही-मन खुश होती चारू बिना कुछ कहे कमरे में अंदर चली गई। उसे अपने इस तरह खुश होने पर आश्चर्य हो रहा था, पर वह सोच रही थी, 'रूप का सौदाई तो एक भँवरा भी होता है, फिर यह तो एक जीता-जागता इनसान है। प्रकृति ने इसे ऐसे ही बनाया है, फिर इसने मुझे एकांत पाकर कभी छुआ भी तो नहीं। इस तरह शक के आधार पर किसी के लिए कुछ भी सोच लेना अच्छी बात नहीं है।'

अब तक डिलेवरी का समय भी नजदीक आ गया था, पढ़ाई भी कुछ ढंग से नहीं हो पा रही थी। प्रेगनेंसी के दौरान अपने कष्टों को देखकर उसे अपनी माँ के कष्ट याद आ जाते थे। वह उसे इन कष्टों से मुक्त करवाना चाहती, पर कैसे?

पापा को तो केवल अपनी सुख-सुविधाओं से मतलब था, तभी तो जब उसने पढ़ाई तथा अपनी प्रेगनेंसी का वास्ता देकर माँ को अपने पास बुलाना चाहा था, तब कितनी बेदर्दी से पापा ने कह दिया था कि बेकार परेशान होती हो, जब अधिक जरूरत होगी, तब मम्मी आ जाएगी। बड़ा गुस्सा आया था चारू को उस दिन पापा पर। माँ को अधिक तनाव न हो तथा उनका डिप्रेशन कंट्रोल में रहे, यह सोचकर वह चुप रही। श्वसुरजी की शुगर बढ़ी होने के कारण सासुजी को भी इतनी जल्दी बुलाना ठीक नहीं लग रहा था; फिर अभी कुछ समय पहले ही तो वे उसके पास रहकर गए थे।

वह माँ को हमेशा के लिए डिप्रेशन से छुटकारा दिलाना चाहती थी। कैसी थी वह मूर्ख, जो खुद तो आजाद नहीं

थी; पर माँ को मुक्त करवाना चाहती थी? शायद यह उसकी भावुकता रही हो या फिर माँ बनने का अहसास। बात चाहे जो भी हो, पर यह सच था कि जयंतजी एक अच्छे पड़ोसी के नाते उसकी हर संभव मदद करने का प्रयास करते रहते।

एक दिन वे सुबह की चाय पर बोले, "चारू, तुम्हें मनोविज्ञान विषय में यदि कहीं मेरी जरूरत हो तो जरूर पूछ लेना।" चारू तो जैसे इसी अवसर की तलाश में थी ही, पूछ बैठी, "सर, सभी मानसिक रोगों का मुख्य कारण क्या होता है?" जयंत बोले, "दमित हुई सेक्स डिजायर। पर तुम यह सब क्यों जानना चाहती हो?" "बस यों ही, कभी यह जानकारी मेरे काम आएगी।"

"चारू, जितनी तुम सुंदर हो, उतनी ही सुशील और उससे भी ज्यादा तुम बुद्धिमान हो। वाकई, ईश्वर ने तुम्हें फुरसत में गढ़ा है।"

"ईश्वर नहीं, मम्मी ने।" न चाहते हुए चारू बोल पड़ी, "मेरा यह रंग-रूप, यह अक्ल, सबकुछ तो माँ की देन है, पर मैंने उन्हें क्या दिया?"

"कितने सुंदर विचार हैं तुम्हारे, यू आर ग्रेट! रियली चारू, आई लव यू।" यह कहते हुए जयंत ने अनजाने ही उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। नजर नीची कर कुछ शरमाई, घबराई सी चारू बोली, "जयंतजी, मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है। निश्चय ही आप बहुत अच्छे इनसान हैं। मैं आपकी मजबूरी अच्छे से जानती हूँ। जब कभी भी मैं आपकी सज्जनता देखती हूँ, अपने पापा का कठोर व्यवहार याद आ जाता है मुझे और मेरे मन में आपके लिए कुछ भाव उमड़ने लगते हैं। मैं नहीं जानती, ये किस तरह के भाव हैं। पर मैं उमंग के बच्चे की माँ बनकर खुश हूँ; पर जयंत का बावला मन कब मानने वाला था, सबकुछ जानकर भी वह नहीं समझ पा रहा था कि आग एवं बिजली में चाहे जितनी समानता हो, पर आग आग है और बिजली बिजली।"

अब तो जयंत की मनोदशा जानकर उसे डर लगने लगा था। अब तक डिलीवरी का समय भी नजदीक आ चला था, श्वसुरजी की बीमारी के कारण सासुजी को आने में दिक्कत हो रही थी, अत: मम्मी उसकी डिलीवरी करवाने आ गई। शरीर तो शिथिल था ही, साथ ही कुछ ज्यादा ही कमजोरी का बहाना बना चारू माँ के आने के बाद बिस्तरों पर ही पड़ी रहती।

मम्मी को देख जयंत खुद उनके लिए चाय बना लाया। अब तो उसके मना करने का सवाल ही न था। माँ तो जयंत की सज्जनता से निहाल हो उठी, फिर भी इस उम्र में उसका एकाकी जीवन उसके लिए कुछ रहस्य से कम न था, फिर तो चाहे-अनचाहे ऐसी बैठकें हो ही जातीं, फिर कभी माँ तो कभी जयंत चाय बना लाते और उनका साथ चारू को भी देना पड़ता।

कुछ समय से चारू माँ के चेहरे की रौनक देख रही थी। अभी उम्र ही क्या थी माँ की, ठीक से चालीस भी तो पूरे नहीं किए थे उसने, कितनी खुश थी माँ! प्यार और सराहाना किसी टॉनिक से क्या कम होती है, तभी तो सारे समय अवसाद में घिरी माँ की दवाएँ भी अब छूटने लगी थीं। क्या यह नानी बनने की खुशी थी या अपने स्व का एहसास या फिर जयंत? अरे! नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा, भारतीय नारी पूरी तरह से पतिव्रता होती है। वह सपने में भी ऐसा नहीं सोच सकती, परपुरुष? कामुक और स्वेच्छाचारी, औरत को अपनी जागीर समझने वाला! क्या मेरी मम्मी कोई इलेक्ट्रॉनिक खिलौना है, जिसका रिमोट हमेशा पापा के हाथ में होता है? क्या हमारा अपनी माँ पर कोई अधिकार नहीं? क्या इस घुटन भरी जिंदगी से हटकर कुछ समय खुले आकाश के नीचे साँस लेने का माँ को अधिकार नहीं? मैं मुक्त करवाऊँ माँ को ऐसे माहौल से, मन-ही-मन उसने खुद से प्रण लिया।

आखिरकार वह समय आ ही गया, जिसका सभी को इंतजार था। वह एक छोटी व प्यारी सी बच्ची की माँ बन

गई। अब तक उमंग भी सात दिनों की छुट्टी लेकर कनाडा से भारत आ गया था। पूरा घर दोस्तों और रिश्तेदारों से भरा था। सभी माँ और बच्ची को बधाई दे रहे थे। चारू ने मौका पाकर एक निगाह बच्ची की ओर और दूसरी दूर खड़ी माँ की ओर करके शरारती बच्चे की तरह पूछा, "अब बताइए, किस फैक्टरी का माल बढ़िया है?" जयंतजी ने मम्मी की ओर धीरे से इशारा कर कहा, "इस फैक्टरी का?" वे नहीं जानते थे कि चारू के मन में क्या चल रहा है, पर यह सच था कि उन लोगों का व्यवहार उन्हें अपनों से भी ज्यादा अपना लगता था। पार्टी के बाद चारू का अधिकांश समय उमंग तथा बच्ची के साथ ही बीतता, कुछ समय वहीं रुककर उसे कुछ समय बाद सेटल होते ही कनाडा ले जाने का आश्वासन देकर उमंग चला गया।

पर चारू अब अकेली न थी, उसके साथ थी उसकी माँ, वर्तमान की यादें और उमंग की निशानी वह छोटी बच्ची। फाइनल इम्तिहान आनेवाले थे, चारू फिर से अपना पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त थी, और वह बच्ची तो सारे दिन नानी के लाड़-प्यार में ही बड़ी हो रही थी, पर डिलीवरी के बाद से न जाने क्यों चारू का बायाँ हाथ ठीक से उठ ही नहीं रहा था! इन सब परिस्थितियों में न चाहते हुए भी पापा को मम्मी को यहाँ छोड़ना पड़ा। अब तक मम्मी का मन भी वहाँ रम गया था, उस बच्ची और जयंत का साथ जो था। अब तक उसकी सभी दवाएँ भी छूट चुकी थीं। फिर भी कोई भी निर्णय लेने से पहले चारू माँ के मन की थाह भी ले लेना चाहती थी। एक दिन खिड़की में बैठकर चाँद को निहारती माँ से उसने पूछा, "मम्मी, क्या देख रही हो?"

चारू! मैं सोच रही हूँ कि एक अकेला चाँद रात के सन्नाटे को चीरकर जाने कितने फूलों को अपनी शीतल रोशनी से नहला देता है; ऐसे ही कुछ लोग औरों के जीवन में खुशियाँ ले आते हैं।" सचमुच चाँद को निहारती चकोरी सी माँ कितनी खूबसूरत लग रही थी उस रात!

आखिरकार वह दिन आ ही गया, जब सपनों के रथ पर सवार उसका राजकुमार कनाडा से उसे लेने आ गया। उमंग ने मकान अभी तक न बिक सकने पर चिंता जाहिर की। अब तो चारू की बेटी माँ के हाथों में थी और माँ के पास मकान न बिक सकने का कारण। पुन: पिताजी के न करने का मतलब ही नहीं बनता था। बड़े विश्वास के साथ माँ बोली, "कोई बात नहीं, जयंतजी तो हैं! जब तक तुम लोग कनाडा में ठीक से सेटल होते हो, मैं मकान और बच्ची की देखभाल कर लेती हूँ।" जयंत के चेहरे पर एक अजीब सी ऊहापोह थी, परंतु चारू की माँ निश्चित थी, मानो कुछ वक्त के लिए सारा आकाश ही उसका हो गया हो।

उड़ते हुए प्लेन में निश्चित सी चारू ने उमंग के साथ चाय की चुस्की ली, मानो वह कहना चाहती हो कि तुम्हें अपना और मुझे अपना आकाश मुबारक हो! उसे तसल्ली थी कि माँ को अब कभी करंट नहीं लगेगा और न ही डिप्रेशन की दवा खानी पड़ेगी, क्योंकि उसकी दवा तो वो वहाँ चाय के प्याले के साथ ही रख आई थी।

दिलों की बातें

पहाड़ी पर चढ़ा वो नौजवान कह रहा था कि उसका दिल अपने पूरे देश में सबसे सुंदर दिल है। घूमने आए सैलानियों ने उसके दिल का मुआयना किया और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वाकई उसका दिल बहुत सुंदर है।

तभी भीड़ में से एक सत्तर एक साल का बुजुर्ग चिल्लाया, "रुको नौजवान! जल्दी किस बात की है? सच तो यह है कि मेरा दिल तुम्हारे दिल से कुछ ज्यादा ही खूबसूरत है।"

लोगों ने देखा, सचमुच, वह तो जोशो-खरोस से भरा हुए एक प्यारा सा दिल था। पर देखनेवाली बात यह थी कि उसमें जगह-जगह खरोचों के निशान बने हुए थे, कहीं-कहीं तो उसके कुछ टुकड़े भी निकले गए थे और जिनकी जगह पर दूसरे टुकड़े निहायत की काम चलाऊ तरीके से अटकाए गए थे जिसके कारण वह दिल देखने में भद्दा लग रहा था। यह देख नौजवान ठहाका मारकर हँस पड़ा और बोला, "महानुभाव आप बड़ा बढ़िया मजाक कर लेते हैं! देखिए न, आपका दिल तो चोट खाया सा दिखता है।" जबकि कुछ आध्यात्मिक अंदाज में वो बोला, "और मेरा दिल अपने आप में बेजोड़ है।"

यह सुन बूढ़ा बोला, "ठीक कहते हो बेटा···तुम्हारा दिल पूर्णत: निर्दोष है, पर मैं ऐसा दिल कभी नहीं चाहूँगा। मेरे दिल में लगा हर जख्म उस शख्स की ओर इशारा करता है, जिसको मैंने अपने दिल का टुकड़ा दिया। मैंने अपना पूरा दिल खोलकर उसके सामने रख दिया। उसके बदले में उसने अपने जीवन का कुल एक ही हिस्सा दिया, जिसे मैंने अपने दिल से जोड़ दिया, अकसर ये टुकड़े ही सटीक नहीं बैठे और दिल की सतह ऊबड़-खाबड़ हो गई।"

आगे वह बोला···"बच्चे! मेरे दिल के ये खाली कोने अकसर इन दु:खद घटनाओं को बयान करते रहते हैं और मुझे दर्द पहुँचाया करते हैं।"

तभी कुछ ठहरकर बूढ़ा बोला···"अकसर आसरा देखता रहता हूँ कि मेरे मन के ये खाली 'कोटर' कभी तो भरेंगे और प्यार में चोट खाया मेर यह दिल फिर से चमकेगा।"

तभी पलटकर वह बोला, "बताओ भी? क्या तुम्हें मेरा यह दिल अभी भी बदसूरत लगता है?"

अब यह बात सुन नौजवान भावुक हो उठा। उसकी आँखों से आँसू बह चले। तभी उसने अपने दिल की ओर हाथ बढ़ाया और उसका एक टुकड़ा बड़े सलीके के साथ बुजुर्ग के दिल पर रख दिया।

बूढ़े ने भी नौजवान की पहली पेशकश को अपने सीने से लगा लिया और अपने विदीर्ण हृदय से एक टुकड़ा निकालकर नौजवान के दिल पर बनी खाली जगह पर रख दिया।

वह टुकड़ा तराशा हुआ नहीं था, अत: नौजवान का दिल अब उतना सुंदर नहीं लग रहा था। पर इसके बावजूद संतुष्टि के साथ वो मुसकरा रहा था।

समाजवाद

गरमियों के दिन थे। एक चींटी थी, एक टिड्डा था। अपने स्वभाव के अनुसार चींटी बड़ी मेहनती थी, जबकि टिड्डा दिनभर मोबाइल और लेपटॉप में उलझा रहता था। जब कभी चींटी उससे कहती, "भाई, तुम भी कुछ बाहर-वाहर निकला करो, कुछ अनाज-पानी इकट्ठा करो, ताकि बरसात और जाड़े में दिक्कत न हो।" एक नजर लैपटॉप पर से हटाकर बड़ी मुस्तैदी से काम करती चींटी को देख, एक क्षण को वो विस्मय भरी मुसकान फेंक फिर से अपने काम में लग जाता। मानो कहना चाहता हो, 'पिली रहो तुम्हीं कामों में, मुझे क्या? फिर ऊपरवाले ने जब जन्म दिया है तो पेट भी तो वही भरेगा न! इसकी चिंता भला मैं क्यूँ करूँ?' फिर से उस पर नजर डालकर, उसे मूर्ख समझकर अकसर वो मुसकरा दिया करता।

चींटी की मेहनत और टिड्डे की मस्तियों के बीच दिन कटते गए, आखिरकार बरसात आ ही गई, जैसे-तैसे टिड्डे का निर्वाह हो गया। जबकि चींटी अपने स्वभाव की मारी या फिर यों कहिए कि संस्कारों के कारण अपने अच्छे भविष्य की तलाश लिये मुस्तैदी से कामों में लगी रही। अबतक तो उसने अपने रहने-खाने का प्रबंध भी कर डाला और निश्चिंत हो चैन की एक जम्हाई ली।

दिसंबर माह की हाड़ कँपा देनेवाली ठंड और उस पर रातभर बरसता पानी, चींटी रानी तो जा दुबकी अपने घर में, पर टिड्डा, रातभर ठंड के मारे काँपता रहा। भूख के मारे उसका हाल बेहाल हुए चला जा रहा था, पर वह करे तो क्या करे! तभी उसे एक खयाल आया। उसने एक प्रेस कॉफ्रेंस बुलाई।

सभी न्यूज चैनल, रेडियो रिपोर्टर व कैमरामैन तथा प्रिंट मीडिया वहाँ पहुँच गए। तब टिड्डे ने अपनी बात शुरू करते हुए कहा, "यह कहाँ का इनसाफ है कि एक ही देश-समाज में चींटी तो मजे से घर में रहती हुई बढ़िया-बढ़िया खाने का लुत्फ उठाए, और एक हम है कि भूख के मारे मरे जा रहे हैं! अत: हमारे लिए भी रहने-खाने का हर हाल में बंदोबस्त होना चाहिए।"

मीडिया ने मुद्दे को जोर-शोर से उछाला···मुद्दे का उछलना था कि बचे सभी टिड्डे भी अपने-अपने हक में उछलने लगे। यह खबर सामने आते ही सारी विश्व-बिरादरी में फैल गई। सभी ने कहा, "यह तो टिड्डों के साथ सरासर नाइनसाफी है। सवाल यह है कि टिड्डे केवल इसलिए अच्छे रहने-खाने से वंचित रह जाएँ, क्योंकि वे संख्या में कम हैं? यह तो सरासर गलत है। चीटियाँ संख्या में ज्यादा हैं और अमीर हैं तो क्या आराम से जीवन जीने का अधिकार सिर्फ उन्हीं को है? बिल्कुल नहीं! यह अन्याय कभी भी बरदाश्त नहीं हो सकता!"

उधर कुछ समाजसेवी टिड्डे चींटियों के घरों के बाहर धरने पर जा बैठे और उनके लिए अधिकारों की बातें करने लगे। कुछ राजनीतिज्ञों ने तो इसे पिछड़ों के प्रति अन्याय बताया। एमनेस्टी इंटरनेशन ने सभी टिड्डों के वैधानिक अधिकारों की याद दिलाई और इस प्रकरण को लेकर भारत सरकार की निंदा की। विपक्ष के नेताओं ने भारत-बंद का ऐलान किया। कम्युनिस्ट पार्टियों ने समानता के अधिकार के तहत चींटियों पर कर लगाए, जबकि मीडिया ने टिड्डों के लिए अनुदान की माँग को पूरी कवरेज दी और इस प्रकार देश में एक बार फिर से समाजवाद की स्थापना हो गई।

नाटक भीतर नाटक

जिंदगी और मौत तो ऊपरवाले के हाथों में है, जहाँपनाह! हम सब तो रंगमंच की कठपुतलियाँ हैं, जिनकी डोर ऊपरवाले की अंगुलियों में बँधी है, कब, कौन कहाँ उठेगा, ये कोई नहीं बता सकता है। हाँ, हाँ, हाँ!" इन्हीं डॉयलॉग के साथ वह 'आनंद' फिल्म का अतिंम दृश्य बड़े ध्यान से देखे चली जा रही थी, "ठीक ही तो है! रंगमंच के समान हम सभी अपना-अपना रोल अदा करते हैं और इस दुनिया से चले जाते हैं।" सोचते हुए उसकी आँखें डबडबा उठीं। कभी-कभी हम फिल्म के पात्रों से कुछ इस तरह से जुड़ जाते हैं कि हमारे और उसके बीच का अंतर खत्म हो जाता है। यही कुछ हाल आज एकादशी का हुआ जा रहा था। रह-रहकर उसकी आँखें डबडबाए चली जा रही थीं। अबतक भावुकता ने उसके चेहरे पर कसकर अपनी जगह बना ली थी। तभी यह क्या!···अब तो उसके आँसू भी झर-झर बहने लगे थे। अपनों से चोट खाए मन का हाल शायद कुछ ऐसा ही होता है।

उसको यों रोता हुआ देख उसकी बहन श्लोका ने दिलासा देनी चाही, तब तो उसकी रुलाई और भी फूट पड़ी। "कैसा जीवंत था वह आनंद, जो क्षणभर के अपने जीवन को सबकी खुशियों से भर देना चाहता था!" तभी भरी आँखें लिये कुछ सोचते हुए···'बिल्कुल लिली फ्लावर के जैसे, जो सुबह के समय संपूर्ण वातावरण में अपनी आभा बिखेरकर शाम होते-होते मुरझा जाता है। उसका जीवन छोटा ही सही, पर दूसरों को खुशियाँ देने के कारण उसका जीना सार्थक हो जाता है।'

तभी···'और यहाँ कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिन्हें दूसरों को सताने में आनंद मिलता है।' सोचते हुए फिर से उसकी रुलाई फूट पड़ती है। श्लोका ने उसे तरह-तरह से समझाना चाहा और फिर उसे खुश करने के लिए गुनगुनाने लगी, "कुछ तो लोग कहेंगे···।"

बिलखते हुए, बहन के कंधे पर अपने दोनों हाथ रखते हुए वह बोली, "कोई क्यों निर्दोष को जीने ही नहीं देना चाहता है!" उसके कानों में अवाजें कौंध रही थीं—

"आजकल लड़कियाँ समय से शादी ही नहीं करना चाहती हैं। हाँ भई, हाँ! करे भी तो क्यों? जो कुछ भी शादी के बाद मिलना था, वह सब तो उन्हें यों ही मिल रहा है न!" अबकी बार पुणे से घर वापसी पर मौसी के द्वारा कहे गए ये शब्द अभी भी नगाड़ों के समान उसके कानों पर चोट कर रहे थे। "बताओ न श्लोका! पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ा होना तथा पापा को अपने प्रति उनकी जिम्मेदारियों से मुक्त कराना, क्या कोई अपराध है? अगर यह अपराध है तो ठीक है, मैं अपराधिनी ही सही।" यह कहते हुए फिर से उसकी रुलाई फूट पड़ी।

अबकी बार उसको दिलासा देने का कोई और चारा न देखकर श्लोका ने टी.वी. पर सद्गुरु का प्रोग्राम लगा दिया। गुरुजी बता रहे थे···'नकारात्मक एप्रोच के लोगों से कैसे बचा जाए?' "उन्हें जो करना है, उन्हें करने दो, पर तय करो कि तुम्हारे सपने क्या हैं? क्या लक्ष्य हैं? क्या आशाएँ हैं? और जीवन की क्या प्राथमिकताएँ हैं? इस तरह की मानसिकता वाले लोग जब तक कि तुम्हें किसी तरह की शारीरिक हानि नहीं पहुँचाते हैं, तब तक उन्हें किसी भी तरह का रिस्पॉंस नहीं देना है।" उसकी चेतना कुछ-कुछ लौटने लगी। उधर से अभी भी प्रभावशाली वक्तव्य सुनाई दे रहा था—"वे तुम्हें उदास देखना चाहते हैं तो उदास होने का नाटक करो। वे तुम्हें गरीब देखना

चाहते हैं तो उनको अपनी शानोशौकत दिखाने की क्या आवश्यकता है? पर यह सब करके अनजाने ही हम उनके अहंकार को ठेस पहुँचा बैठते हैं।"

उधर प्रस्तोता पूछ रहा था, "लेकिन गुरुजी! ऐसा करना तो ढोंग है।"

"पर ऐसा न करना भी तो खुद के साथ अन्याय है। क्या तुम चाहोगे कि तुम जीवन भर उपेक्षा के दंश सहो? इससे पहले कि तुम अवसाद में घिरने लगो, तुम्हारा वहाँ से निकलने का सबसे सरल उपाय है···कोई आपकी उपलब्धियों से जले तो उन्हें जलने दो। याद रखना, जलनेवाले के कलेजे का ही मोम पिघलता है, इससे दूसरे को भला क्या फर्क पड़नेवाला है?" तभी एक गहरी निश्वास के साथ, "हाँ, फर्क पड़ता है, जब तुम उधर ध्यान दोगे? तुम्हारे लिए बेहतर होगा कि अपने ध्यान की दिशा अपनी उन्नति की ओर मोड़ दो। जैसे ही उसका बड़बोलापन कम होगा, तब तक तो तुम विकास के उस पथ पर दूर, बहुत दूर चले जाओगे, जहाँ तक पहुँचना उसके वश की बात नहीं रह जाएगी।" कहते हुए उन्होंने एक लंबी साँस ली और अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे, 'ओम शांति ओम' के जाप की ध्वनि सुन श्लोक ने जैसे ही टी.वी. बंद करना चाहा तो एकादशी को अपनी गोद में निश्चिंतता के साथ सोते हुए पाया।

समय की समझ

एक बार की बात है, एहसास और सभी भाव मिलकर छुट्टियाँ मनाने किसी बियावान द्वीप पर गए।

वहाँ पर सभी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार मजे ले रहे थे। तभी वहाँ भयंकर तूफान होने की चेतावनी हुई और सभी को द्वीप छोड़कर जाने को कहा गया। अचानक हुई इस घोषणा से चारों ओर अफरातफरी मच गई। सभी अपनी-अपनी नावों की ओर भागने लगे। जिनकी नाव टूट-फूट भी गई थी, वे भी तुरंत उसे ठीक करने लगे।

प्रेम को वहाँ से जाने कि हड़बड़ी नहीं थी। उसे अभी बहुत कुछ करना था। लेकिन जैसे-जैसे बादल गहराने लगे, प्रेम को लगा कि अब यहाँ से जाने का समय आ गया है। लेकिन अब वहाँ पर कोई नाव नहीं थी, तभी उसे सामने से आती हुई एक और नाव दिखाई दी, जिसपर खुशहाली बैठी हुई थी। उसने खुशहाली से कहा, "क्या तुम मुझे अपनी नाव में जगह दे सकती हो?" "नहीं, मेरी नाव में बहुत सारा धन—सोना व चाँदी रखा हुआ है। तुम्हारे बैठने के लिए उसमें और जगह नहीं है।" खुशहाली ने कहा।

थोड़ी देर बाद एक और नाव पर उसे सुंदरता जाती हुई दिखाई दी। प्रेम चिल्लाया, "मैं पीछे छूट गया हूँ, मुझे अपने साथ लेकर चलोगी?" घमंड के साथ सुंदरता ने कहा, "नहीं, मिट्टी और कीचड़ में सने तुम्हारे पैरों से मेरी नाव गंदी हो जाएगी।"

कुछ देर बाद दु:ख वहाँ से गुजरा। मदद माँगे जाने पर उसने कहा, "मैं बहुत दु:खी हूँ और अकेला रहना चाहता हूँ।" खुशी इतनी खुश थी कि उसे प्रेम की आवाज सुनाई ही न दी।

यह सब देखकर प्रेम खुद को उपेक्षित महसूस करने लगा। उसे लगा कि किसी को भी उसकी जरूरत नहीं है। तभी उसे एक आवाज सुनाई दी, "आओ प्रेम! मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा।" प्रेम उस आवाज को नहीं पहचान पाया। कुछ ही क्षणों में तूफान आनेवाला था, अत: देर न करते हुए वह नाव में बैठ गया। अब वह निश्चिंत था। नाव से उतरने के बाद प्रेम को ज्ञान मिला। विचारों में उलझे प्रेम ने पूछा, "ज्ञान, क्या तुम बता सकते हो कि किसने मेरी मदद की?"

ज्ञान ने कहा, "वह समय था।"

"भला समय मेरी मदद क्यों करेगा? जबकि उस समय हर कोई मुझे वहाँ से छोड़कर जा चुका था।"

मुसकराते हुए ज्ञान बोला, "क्योंकि समय ही आपका महत्त्व जानता है। आगे ज्ञान बोला, "अकसर लोग खुशहाली और दु:ख के समय प्रेम को नजरअंदाज कर देते हैं। लेकिन यह भी सच है कि समय के साथ ही हमें प्रेम का महत्त्व समझ में आ जाता है।"

अपना घर

"धवल, यह अपार्टमेंट तो बड़ा सुंदर है, कब खरीदा?" वर्षों बाद मिले सहपाठी करण ने जानना चाहा।

"कहाँ यार! यह तो किराए का है। तुम्हारी तरह मैं खुशनसीब कहाँ, जो समय रहते अपने परिवार के साथ देहरादून की हरी-भरी वादियों में रह रहा हो।"

"पर यार! तुम्हारी तो जॉब मुझसे अच्छी थी, फिर क्यों?"

"पर तमन्नाएँ भी तो बड़ी थीं।" तभी एक गहरी साँस के साथ, करण के कंधों पर हाथ रखते हुए, "सच तो यह है कि उम्र के इस मोड़ पर आकर महसूस कर रहा हूँ कि जब बीस लाख का फ्लैट खरीदने का मुझमें सामर्थ्य था तो मैं तीस लाख का और अधिक बड़ा तथा सुंदर फ्लैट चाहता था, फिर तीस लाख जुड़ने पर चालीस लाख का और ऐसे करते-करते एक दिन तमन्नाओं ने इतनी ऊँची उड़ान भरी कि वहाँ तक पहुँच पाना मेरे वश में ही न था, फिर हारकर धड़ाम से आ गिरा नीचे तुम्हारे पास।"

कुछ सोचते हुए…"आज महसूस कर रहा हूँ कि मुझे तमन्नाओं को अपनी पकड़ में रखना चाहिए था, पर मैं तो पूरा-का-पूरा अपने वजूद को समेटे उसकी बाँहों में ही जा गिरा तथा अब तो, जब मकान खरीदने की तमन्ना ही न रही तो फिर मकान खरीदकर क्या करूँगा और किसके लिए?" यह बात कहते हुए वह अनंत आकाश की ओर देखने लगा।

राक्षस

उस दैत्य ने पूरे गाँव में आतंक मचा रखा था, कभी इसको मार डालता था तो कभी उसको। कभी-कभी तो दुलहन को फेरों से उठाकर मारकर खा डालता था तो कभी मासूम बच्चों की बली लेकर अपनी हवस को शांत करता था।

यह सच था कि हफ्ते में पाँच दिन वह सोता था, परंतु बचे दो दिन जो गदर काटता था कि गाँववाले सूखे पत्तों के समान सिहरकर थर-थर काँपने लगते थे।

अंत में गाँव में पंचायत बैठाई गई। डरते-डरते राक्षस को बुलाया गया। गाँव के सबसे होशियार व्यक्ति ने आपसी सलाह-मशविरे के बाद राक्षस के पास प्रस्ताव रखा कि वह इस तरह गाँव-के-गाँव न उजाड़े, हम इसके बदले खुद हफ्ते में एक आदमी को बारी-बारी से तुम्हारे पास भेजते रहेंगे।

भूख-शांति की बात सुन राक्षस ने एक तेज हुंकार भरी और शांत होकर वापस जंगल की ओर चला गया।

कहानी सुनते हुए बीच में ही चुन्नू बोल पड़ी, "वो राक्षस कौन था, नानी!"

सुहानी—"धत्, तेरे को इतना भी नहीं मालूम! वही, वही, जिनको हैदराबाद में गोलियों से उड़ाया गया था।"

चुन्नू—"सच नानी!"

नानी—"हाँ बच्चो, ऐसे ही कुछ होते हैं राक्षस।"

इज्जत और पैसा

एक दिन क्या हुआ कि इज्जत और पैसे में आ ठनी। इज्जत बोली, "मेरे बिना जरा जी करके तो दिखा बच्चे!"

उधर से गोल-गोल घूमता चाँदी का रुपया सामने आ खड़ा हुआ, "मेरे बिना क्या खाएगी और क्या पहनेगी? जा-जा, बड़ी आई बड़ी बनने वाली! भूख लगने पर कोई इज्जत थोड़े ही न फाँक लेगा? मैं नहीं मानता ऐसी बकवास बातों को!"

इज्जत चिल्लाई, "मैं रूठ गई न तो समझ लियो···केवल पैसे को तिजोरी में भरकर कोई क्या कर लेगा भला?"

अभी उन दोनों के बीच गुपचुप बकझक चल ही रही थी कि तभी घर की मालकिन के चीखने की आवाज सुनाई दी, "हम इज्जतदार आदमी हैं, कोई ऐरे-गैरे नहीं! चार आदमी यह सब देखे तो अच्छा नहीं लगता, जरा ढंग से काम किया कर, और हाँ, ढंग से बोला-चालाकर!"

उधर से चीखती हुई बाई की आवाज सुनाई दी, "इज्जत-इज्जत, अरे! हम बेइज्जत ही सही, रुपया-पैसा देती नहीं और काम चाहिए ढेर सारा···?" यह कहते हुए ठुनककर वह चल दी।

"बिना पैसों के तेरी खाली इज्जत का क्या मैं अचार डालूँगी?" यह सोचती हुई अब तक वह घर से बाहर हो ली थी।

यह सब देख, अब तक तो इज्जत और पैसे का बुरा हाल था। उनसे उस समय कुछ भी कहते नहीं बन रहा था। वे तो बस एक-दूसरे का मुँह भर ताक रही थी।

कुत्तेजी

अखबार में खबर छपी, 'सुबह-सुबह चार कुतों ने झबड़कटी बस स्टेशन के पास कामवाली बाई को काट डाला।' दूसरे दिन इस खबर की चर्चा चाय-समोसे की दुकान पर हो रही थी। जूठे पत्ते चाटना छोड़ वहाँ खड़े कुत्ते ने यह खबर ध्यान से सुनी। यह बात सुन उसे कतई अच्छा नहीं लगा। उस समय वह मन में क्रोध का भाव लिये सोच रहा था, 'इतना अपमान, वह भी मेरे ही सामने मेरी ही बिरादरी का? भला यह भी कोई बात हुई!' गुस्से के मारे आगे के दोनों पैरों को आपस में जोड़ते हुए उसने एक तेज अँगड़ाई ली और चिमचिमाती आँखों को थोड़ा और धारधार बनाते हुए पास पड़े अखबार में छपी खबर पर फिर से नजर घुमाई। खबर तो सच ही थी। फिर क्या था, उस समय गुस्से के मारे उसके नथुने फूले चले जा रहे थे।

तभी पास पड़ी बेंचों पर बैठे कुछ लोगों को उसने अपनी ओर हिकारत भरी निगाहों से देखते हुए पाया। अब तो उसका गुस्सा सातवें आसमान पर था।

तभी प्लेट से चाय सुड़कते हुए सिकट्टू पहलवान को कुछ फिल्मी अंदाज में कहते सुना, "कौन कहता है कि कुत्ते वफादार होते हैं? काट डाला सुसरी को।" तभी बेहूदगी हँसी हँसता हुआ दूसरा (खीसें निपोरते हुए) बोला, "वह भी पिछवाड़े में।" हाँ, हाँ, हाँ, हाँ की आवाजें अभी भी उसके कानों में बज रही थीं।

मौका ही ऐसा था अकेले कुत्तेजी भला क्या करते, उस वक्त बेचारे चुपचाप खून का घूँट पिए चले जा रहे थे। तभी सामने से आते अपने एक बिरादरी भाई को देख उसकी कुछ जान में जान आई। भौं-भौं कर उसे अपने पास बुलाया और फिर तेजी से गुर्राते हुए अपने दिले हाल सुनाता हुआ बोला, "कुतिया साली! पत्थर मार रही थी!" दूसरा बोला, "ये आदमी भी न, हमेशा हमें ही गलत ठहराते हैं। पर अपना दुखड़ा कहें तो किससे कहें?"

और आपस में दु:ख-दर्द साझा करते हुए एक-दूसरे के पीछे भागने लगे।

उस समय उनको तो जो कुछ भी कहना था, कह चुके थे। पर यह बात और है कि सुननेवालों को उनकी बात समझ में आई या न आई!

कल और आज

कार बाहर के रास्तों पर तेजी से दौड़ी चली जा रही थी। कल हुई बेटे से झिकझिक के कारण उसने उससे कुछ और बात न करना ही उचित समझा। सुबह की बातें रह-रहकर उसके कानों में गूँज रही थीं, "नहीं मानता मैं इन सब आडंबरों को, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम ढोए चले जा रहे हैं। यही सब करना था तो हमारी हायर स्टडीज का क्या फायदा?"

"पर बेटा! पितरों का तर्पण भी तो जरूरी है, नहीं तो घर पर पितृदोष लग जाता है!"

"पर मुझे ये सब ढकोसले बिल्कुल पसंद नहीं। बताइए, आपकी बहू और मैं जॉब करें या फिर पूड़ी-कचौड़ी तलें?" कुछ चिढ़कर उसने कहा था, "जवान बच्चों से कौन मुँह लगे!" यह सोचकर उस वक्त वह चुप रह गया था।

"पापा, बाहर आइए!" कार एक बड़ी ऊँची इमारत के पास खड़ी थी। लॉन को पार कर वे लिफ्ट की ओर बढ़ चले। 'वृद्धाश्रम?' उस समय बेटे-बहू से जुड़े जीवन के सारे लम्हे एक ही पल में उनकी आँखों के सामने से गुजर गए। 'ऐसा क्या कह दिया था कि···।' सोचते हुए, आँखें भीगने को हो आईं···आँसुओं को तौलते हुए···'बस आस्था और विश्वास की ही तो बात की थी, पसंद आए तो अपनाओ या न अपनाओ।' खुद-ब-खुद वह सोच रहा था। तभी "पापाजी!"···बहू की आवाज सुन उसका सन्नाटा भंग हुआ, पर मन में सन्नाटा तो अभी तक पसरा हुआ था।

"लगता है, आप अभी तक हमसे नाराज हैं?" यह कहते हुए वे एक बड़े हॉल की ओर बढ़ चले। "यह देखिए! एच.आई.वी. रोगियों का 'शरणागृह'। इन गरीब, लाचार, असहाय लोगों की सहायता कर हम अपने पूर्वजों का श्राद्ध मानाएँगे। बाबूजी! आपकी बहू प्रज्ञा का मानना है कि जरूरतमंदों तथा बीमारों की सेवा करना ही सबसे बड़े पुण्य का काम है।"

अब तो पिताजी की आँखों से दु:ख की जगह पश्चात्ताप के आँसू टपक रहे थे।

गहराई

"प्रेम कितना गहरा होता है?" उस दिन हौवा ने यह सवाल आदम से पूछा था और आदम ने जवाब दिया था, "सागर की तरह।" मगर सागर ने इनकार करते हुए कहा था, "नहीं, धरती की तरह, क्योंकि वह मुझसे गहरी है।"

धरती को यह कैसे स्वीकार होता, बोली, "नहीं, प्रेम मुझसे कहीं ज्यादा गहरा होता है। आसमान से उसकी तुलना करनी चाहिए।

किंतु आसमान को यह गलती मान्य नहीं थी। उसने कहा, "नहीं, वह इनसान की तरह होता है।" और यह बात सुनकर हौवा उदास हो गई। एक गहरी निश्वास छोड़ते हुए···उसने कहा, "सवाल तो यही है कि इनसान की गहराई मापे तो कौन मापे भला?"

कठौती में गंगा

किसी ने किसी से कहा, "एक बात कहूँ यार! 'जब मन चंगा तो कठौती में गंगा'।"

दूसरा बोला, "वो तो ठीक है यार, पर सवाल यह उठता है कि हर तरफ वासनाओं और लोभ-लालच के मैल के नीचे दबा यह मन बेचारा चंगा हो तो भला कैसे?"

यह कैसा न्याय?

स्कूल के पुस्तकालय में कुछ लड़कियाँ अखबार उलट-पलट रही थीं तो कुछ अपनी पसंद के प्रिय लेखक की किताबें तलाश रही थीं। आज मनोविज्ञान की मैम जयाजी की छुट्टी थी, अत: लड़कियों के मजे थे।

तभी अखबार में छपी एक खबर पर निगाह पड़ते ही वे चौंकीं, "कुछ शरारती लड़कों ने खेत में बकरी के साथ दुष्कर्म कर डाला।"

यह खबर पढ़कर आक्रोशित हुई रिद्धिमा, जिसको कि अभी पिछले हफ्ते ही स्कूल में छोटी स्कर्ट पहनकर आने के कारण सभी के सामने सजा मिली थी। कुछ तंज कसते हुए बोली, "अगर लड़कियों के कपड़े ही लड़कों को रेपिस्ट बनाते हैं, तब तो इन बकरियों को, जो दिन-रात नंगी घूमा करती हैं, उन्हें भी साड़ी या बुर्का पहना देना चाहिए था न?"

फिर एक ऊँची हँसी के साथ, "आदमी का ईमान न डोले, इसलिए हम खुद को बड़े-बड़े कपड़ों में लपेट लें? ईमान तुम्हारा डोले और सजा हमें मिले, यह कैसा न्याय है भला?"

साहित्य की आत्मकथा

मैं एक साहित्य, लोगों का दुलारा, क्योंकि मेरे अंदर छुपी हुई है लोगों की अनगिनत समस्याएँ और उन समस्याओं का समाधान। साहित्य प्रेमीजन तो मुझे अपने दिल की धड़कन समझ हमेशा अपने सीने से लगाए फिरते हैं।

ढेरों पुरस्कारों और सम्मानों से आच्छादित लोग मुझे सभी कलाओं का सिरमौर मानकर अपने सिर-आँखों पर बिठाते हैं। वे मेरे जन्म पर आश्चर्य करते हैं, पर जरा मुझसे पूछिए कि मैं यहाँ पर आया कैसे? क्या है मेरा अस्तित्व और क्या है मेरे पैदा होने का प्रयोजन?

अब सवाल यह उठता है कि मेरी पैदाईश सबसे ज्यादा कहाँ पर होती है? तो इसका एक सीधा सा जवाब है कि जिस समाज में रंगभेद, लिंगभेद, शोषण व अन्याय छुपा होगा, वही तो वह उपजाऊ भूमि है, जहाँ पर मैं खूब फलता-फूलता हूँ। यह बात और है कि जब लोगों को मुझमें गुण दिखाई देने लगते हैं तो वे मुझे फूलों की माला के समान सीने से लगाए घूमते हैं। पर वे नहीं जानते कि मेरे भीतर कितनी आहें और कराहें दफन हैं। उन्हें तो मुझमें ताजमहल के समान सुंदरता-ही-सुंदरता दिखाई देती है।

चाहे उनकी बात जो भी हो, पर अपने जन्मदाता, जिसने कि मुझे शब्द-शब्द मिलाया, अनेक भावों और उपमाओं से सँवारा तथा नाना प्रकार से मेरा रूप अलंकृत किया, यदि मैं उसके दर्द को नहीं समझूँगा तो मैं उसके प्रति कृतघ्न न कहलाऊँगा?

लोगों का ऐसा मानना है कि यह कला तो साहित्यकारों को ईश्वरीय देन के रूप में प्राप्त होती है; पर मेरा मानना है कि मैं रचनाकार की एक ऐसी अनचाही संतान हूँ, जिसके पैदा होने का जश्न हर कोई मनाता है, फिर चाहे बच्चा लायक हो या फिर नालायक।

अच्छा तो अपनी बातों को अब मैं यहीं विरोम देता हूँ। अपने जन्मदाताओं के मनोभावों को मैं नहीं तो भला कौन समझेगा? इसलिए आज मेरा मन भर आया और आपसे बातें करने लगा।

शादी डॉट कॉम

क्या नाम है आपका?" लड़के ने आगे बात बढ़ानी चाही।

"बायोडेटा में भेज दिया था।"

"भाई-बहन?"

"भाई-बहन का क्या करेंगे?" लड़का अवाक् हो उसे देखने लगा, "और आपकी च्वॉइस क्या है? लेट नाइट पार्टीज, देर तक सोना और छोटे-छोटे कपड़े पहनना!" तभी उसके अल्ट्रामॉर्डन कपड़ों को देखकर वह लड़कियों की तरह झेंप गया।

कुछ सकपकाकर, "घर के काम-काज…?" 'ओ गॉड! डबल रिस्पॉन्सिबिलिटीज' (मन-ही-मन में) 'घर में नौकर तो होंगे ही न?' लड़का अवाक् बैठा उस सुदंरी को बस देखे चला जा रहा था।

लड़की—"अच्छा, मेरे प्रति आपकी अपेक्षाएँ क्या रहेंगी? (मन-ही-मन 'मेरी माँ, मेरी बहनें…वगैरह-वगैरह, बेवकूफ समझ रखा है मुझे!')"

लड़का—"कुछ खास नहीं!"

"अच्छा, शादी के बाद जॉब तो करेगी न?" अब तो लड़की उत्तेजित हो उठी! (मन-ही-मन 'मेरी नौकरी पर राज करना चाहता है?') "यह तो बाद में सोचूँगी।"

"मेरा मतलब है, आजकल लड़कियाँ जॉब करना चाहती हैं, सो पूछा।" 'तो जनाब आप मुझे पुटियाना चाह रहे हैं?'

तभी कॉफी की चुस्की के साथ सामने से आवाज सुनाई दी, "वैसे आपकी मंथली इनकम कितनी है?" 'क्या कमाई, क्या जॉब? पहले अपनी बता?' कुछ गुस्से को पीते हुए, "बेकार की बकवास करता है। अरे, पत्नी नहीं पाल सकते तो शादी क्यों कर रहे हो? मतलब यह है कि गाय भी आए और चारा-भूसी भी साथ लाए?" अब तो गुस्से के मारे उसका चेहरा और अधिक लाल हुए चला जा रहा था। परंतु 'एक्सक्यूज मी' कहते हुए वह कॉफी का कप टेबल पर रख वॉशरूम की ओर बढ़ गई।

उधर वह व्हाट्सएप पर टाईप कर रही थी, "चिरकुट कहीं का!" और टेबल पर बैठा लड़का लिख रहा था, "आजकल की लड़कियाँ भी न…पूरी पटाखा हैं।"

गुनहगार

वह लड़का घंटाघर की घड़ी के पैंडुलम को पकड़कर लटका था। देखते-ही-देखते वह पैंडुलम पर झूलने लगा। असहाय खड़ी भीड़ उसे एकटक देखे चली जा रही थी। किसी ने जल्दी से जाल लगाने की बात की तो कोई सीढ़ी लेने दौड़ पड़ा, तभी किसी ने फायरबिग्रेडवालों को खबर कर दी; पर वह तो अभी भी सबके सामने बसंती का वीरू बनने के लिए आमाद दिखाई दे रहा था। अपना एक हाथ और पैर हिला-हिलाकर अभी भी वह चिल्ला रहा था, "हट जाओ शहरवालो, हट जाओ!" तभी घड़ी की ओर मुखातिब होकर, "इस वक्त ने मुझे बरबाद किया है, आज मैं इसे बरबाद करके ही मानूँगा।"

नीचे से एक सयाना चिल्लाया, "अरे पगले! कहीं तेरे लटकने से समय रुक सकता है भला? वह तो साँसों की गति के जैसा हमेशा चलायमान है।"

पर वह तो उसकी बातों से बेफिक्र था। अभी भी भीड़ में से आवाजें आ रही थीं—"उतर पगले, उतर!"

पर वह तो जैसे घड़ी को पैराशूट समझ जल्द-से-जल्द नीचे कूद जाना चाहता हो! अत: चिल्लाया, "आज तो मैं इसे बरबाद करके ही दम लूँगा।"

नीचे से एक जवान लड़का चिल्लाया, "अबे पगले! इसको बरबाद करने के चक्कर में खुद को क्यों बरबाद करने पर तुला है?"

तभी घड़ी का बारह बजे का घंटा बज उठा, "दोनों सुइयाँ प्रेमी-युगलों की भाँति आपस में जा मिलीं, ऐसा लगा कि वक्त ने वक्त को पहचान लिया है।" तभी उसके कान में घड़ी फुसफुसाई, "क्यों नाहक मुझे दोष देता है? तू आजतक समय को बरबाद करता रहा है, इसीलिए आज वक्त ने तुझे बरबाद कर दिया है। अपनी गलती समझ। फिर भला मैं कैसे गुनहगार हो सकती हूँ?"

सॉयोनारा

म्यूनिसिपलिटी गार्डन में सप्तपर्णी की छाया में बैठे दो प्रेमी-प्रेमिका आलिंगनबद्ध हुए आपस में बातें कर रहे हैं। तभी···कामोत्तेजित हो प्रेमी ने प्रेमिका को कसकर चूमना चाहा तो शर्माकर उसने अपना सिर नीचे कर कहा, "शादी तक इंतजार करो, अवि।" न जाने कैसे उसकी तीसरी आँख ने चेहरे पर उतर आए उसके भावों को पढ़ लिया था। अवि ने उसके घुँघराले बालों को सहलाते हुए कहा, "पर साला दिल है कि मानता नहीं, यह तो तुम्हारी याद में पागल हुआ जा रहा है।" प्रेमी की आँखों में भरे भावों को पढ़ते हुए वह बोली, "देखो अवि, मैं तुम्हारी शारीरिक जरूरतों को अच्छी तरह से समझती हूँ···पर यह भी सच है कि जब भी दिल और दिमाग के बीच द्वंद्व छिड़े, तब हमें हमेशा अपने दिमाग की ही सुननी चाहिए।" यह सुनकर कुछ नाराज होते हुए, अवि बोला, "बी प्रैक्टिकल आकांक्षा, ट्राई टू अंडरस्टैंड मी।" और फिर कुछ अधिक गुस्से में आकर वह उससे कुछ ऊँची आवाज में बोला···"तेरे इस नालायक, बदतमीज दिल को अभी यही राग अलापना था!" तभी तनाव में भरकर···'बंजारा दिल आवारा दिल' गाना गुनगुनाने लगा।

अबकी बार दिलवाले के द्वारा दिलों का ऐसा अपमान आकांक्षा से देखा न गया, बाहर से भले ही वह मॉर्डन लगती थी, पर थी तो वह एक भारतीय लड़की ही न। आँखों में आँसू भरकर बोली···"मुझे समझाने की बजाय जरा अपने दिल पर हाथ रखकर तो पूछो···अगर दिल को लेकर दो प्रेमियों की ऐसी घटिया सोच होगी तो फिर, औरों का तो अल्लाह ही मालिक है।" तभी अवि के कंधे को कुछ झकझोरते हुए···"देखो न अवि! हमारी आँखें हमेशा बुरा देखती हैं, ये जो दोनों कान हैं, बुरा ही सुनना चाहते हैं और अपने मुँह से हम जल्दी किसी के बारे में अच्छा बोल नहीं पाते हैं। कहने का मतलब यह है कि हमारे हाथ-पैर, आँख-नाक, कान सहित जितनी भी हमारी इंद्रियाँ हैं, वे कभी अच्छा काम नहीं कर पातीं, पर यह दिल ही तो है, जो इन सबसे पूरी तरह से अलग और मासूम है। पर···नटखट सा तेरा यह दिल, पवित्र से मेरे दिल को समझाना चाहता है कि क्या सही है और क्या गलत!" यह कहते हुए उसने उसकी गोद में अपना सिर रख दिया।

किसका पोस्टमार्टम?

ननकू और ननकी की प्रेम-कहानी तो सारे गाँववालों को मालूम थी—परजात के होते हुए भी दोनों ने जात-बिरादरी और परिवार की परवाह किए बिना शादी की और मजे से रह भी रह थे। अभी तीन महिने पहले ही तो ननकी के बेटा हुआ था। क्या नाम था उसका? 'राजहंस!' अरे, नाम-वाम में क्या धरा है, मतलब की बात पर आते हैं, तो उस दिन ननकू फिर से किराए का ट्रैक्टस लेकर पराए खेतों की तरफ सुबह-सुबह ही चल पड़ा था और वापसी में घर के पास पहुँचते ही अँधेरा छा गया। 'ट्रैक्टर यहीं लगा दूँ!' यह सोचकर वह ट्रैक्टर रिवर्स करने लगा, तभी बाहर गाड़ी की आवाज सुन पागलों के समान चीखती हुई ननकी दौड़ पड़ी। जबतक कि वह ननकू को चिल्लाती और वह उसकी बात समझता; उसकी चित्कार विलाप में बदल गई, "मार डाला दैया हो, मार डाला…" जब तक कि ननकू कुछ समझ पाता, ननकी छाती पीट-पीटकर रोने लगी, "अबही तो हमार पूरा दूधौ नाही पीया, हाय! हमार बच्चा…" कहते हुए पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ी, कुछ होश आने पर, "जरा पानी पीवे खातिर अंदर का चली गई, हाय! हमार बच्चा! मार डाला!" पहिए के नीचे दबे मृत्य बच्चे को देख अब तो दोनों ही जोर-जोर से विलाप करने लगे।

उस समय ननकू तेजी-तेजी से अपने हाथों से अपने ही मुँह पर चाँटे मारे चला जा रहा था।

इतना सब होने के बाद पुलिस काररवाई, पोस्टमार्टम वगैरह तो होना ही था। पर माँ-बाप का दिल कहाँ माननेवाला?

खून से सने टैक्टर के पहिए के नीचे दबे लोथड़े को ले जाती पुलिस को देख दोनों हथेलियों को ऊपर उठाकर, हाथ जोड़कर लड़खड़ाता हुआ ननकऊ विलाप करते हुए बोला, "मालिक, हमार बच्चे को कहाँ ले जा रहे हो?"

पुलिस—"इसका पोस्टमार्टम करवाना है, जरूरी है।" रोते हुए ननकू, "किसका पोस्टमार्टम करवाओगे, साहब? इस लोथड़े का?" कहते हुए वह बेहोश हो गया।

❑

किताबें बोलती हैं

दुनियादारी में पड़ा हुआ भी मैं अकसर अपने लिए कुछ-न-कुछ वक्त निकाल ही लेता हूँ। कॉफी की चुस्कियाँ और दोस्तों का साथ भला किसे अच्छा नहीं लगता है?

उस दिन कॉफी हाउस में गरम-गरम कॉफी पीते हुए जब हम दोनों दोस्त मजे से आपस में गप्पें लड़ा रहे थे कि तभी बगल की अलमारी से मुझे किसी के फुसफुसाने की आवाज सुनाई दी। एक क्षण के लिए तो मैं इस बात को अपना भ्रम समझकर चुप रह गया, पर अगले ही पल मुझे ऐसा लगा कि शायद ये किताबें आपस में कुछ बातचीत कर रही हैं।···एक बोली, "सालों से बंद कर रखा है इन लोगों ने अलमारियों में हमें, मानो हम इनके मित्र न होकर कोई दुश्मन हों!" तभी नीचे की सेल्फ में करीने से सजी एक किताब बोली, "तुम तो बस आज और कल की ही बातें किया करती हो, देखा जाए तो इस प्रकार से तुम्हारा ज्ञान तो अधूरा ही है न! पर मुझमें तो भरी हुई हैं दुनिया-जहान की जानकारियाँ।" तभी फिर से पहली किताब बोली, "ठीक है! ठीक है बहन, चलो मान भी लिया कि तुम्हारा ज्ञान मुझसे ज्यादा है।" तभी कुछ भावुक होते हुए, कुछ चिंता के साथ वह बोली, "पर क्या तुमको नहीं लगता बहन कि हमारे इस बंदीगृह में बंद रहने से ज्ञान भइया तो यहाँ पर घुट-घुटकर ही खत्म हो जाएँगे?" दूसरी बोली, "ये लो जी! बहनजी को तो लगता है कि सारा ज्ञान सिर्फ इन्हीं के अंदर भरा हुआ है।" पहली बोली, "इस तरीके से क्यों बोल मारती हो? सच तो यह है कि घुटन के मारे मेरा हाल-बेहाल हुआ जा रहा है।"

इस तरह उनको आपस में बात करते देख आशीष कुछ अचंभित सा हो उठा, पर प्रतीक के लिए यह अनुभव कुछ नया-नया सा था, बोला, "इस लोकतांत्रिक देश में जब सबको बोलने की आजादी है, तब इन ज्ञान के गुरुओं के लिए भला क्यों नहीं?"

तभी आशीष बोल पड़ा, "इस ऑनलाइन के जमाने में किताबें पढ़ने की फुरसत भला किसे है? बेमतलब की भावुकता से बाहर निकलो!" कुछ चिढ़कर, "अभी तक तो घर के मेढक भी टर्र-टर्र किया करते थे और अब इन···किताबों···मेरा मतलब इन मेढकों के भी पंख निकल आए हैं?" तभी कुछ सूँघने का अभिनय करते हुए प्रतीक बोला, "मेरे घर में भी पापा और दादाजी ने ढेर सारी अच्छी-अच्छी किताबें इकट्ठा की हुई हैं, उनकी जो खुशबू है, वह मन में एक अलग ही एहसास जगाती रहती है।" आगे वह बोल···"भाई समझने का प्रयास करो, यह तो वही बात हुई कि हम यात्रा-वृत्तांत टी.वी. पर देखते हैं या फिर हम घूमने जाते हैं और उस सिचुएशन को महसूस करते हैं। यही कुछ अंतर किताबों को पढ़ने या फिर वर्चुअल संसार में उनहें ढूँढ़ने का है।"

चैंबर

फेसबुक पर आए एक पोस्ट को देखकर मैं उसे ध्यान से पढ़ने लगी, जिसे डॉ. मनविंदर कौर ने अपनी दिल की बाइपास सर्जरी के कुछ समय बाद पोस्ट किया था। 'जब मैं ऑपरेशन थियेटर से सर्जरी करवाकर बाहर आया तो मेरी पत्नी नंदिनी, मेरे मित्र डॉ. सुब्रह्मण्यम से कुछ फिक्र के साथ पूछ रही थी, "डॉक्टर अंदर सबकुछ ठीक तो रहा?" उस समय उसका घबराया हुआ चेहरा देखकर मुझे लगा कि वह जानना चाहती है कि मेरे दिल में उसके सिवाय कोई और तो नहीं है? ऐसी शरारत दिमाग में आते ही मैं मुसकरा दिया। आहिस्ता-आहिस्ता रिकवरी के बाद जब मैरी चेकअप के लिए डॉ. के पास गया, उस समय मेरी प्रिय पत्नी भी मेरे साथ थी। मुझे तथा मेरे दिल को लेकर अबतक वह काफी आश्वस्त हो चुकी थी। उसके चेहरे की शांति यह सब बता दने के लिए काफी थी। मजे लेने की गरज से मैंने अबकी डॉ. से कहा, "सुबु, कहीं नंदिनी के अलावा कोई और औरत तो वहाँ लुकी-छुपी नहीं बैठी थी न?" वह मेरी बात के आशय को समझ मुसकराते हुए वे बोले, "हाँ मनविंदर, सबकुछ अच्छा था। तुम्हारी रिकवरी की रिर्पोट बहुत अच्छी आई है। अबतक मेरा उनके साथ दोस्तानापन छा चुका था। अत: नंदिनी को चिढ़ाने की गरज से मेरी तरफ आँखों से इशारा कर कुछ पास आकर वे बोले, "लेकिन भाभीजी, इनके दिल के तो चार चैंबर हैं, कहीं कोई भूल-चूक हो गई हो तो माफ कीजिएगा।" कहते हुए वह पुन: मुसकरा दिए।

यकीन मानिए, उस समय वहाँ दर्द की जगह ठहाकों का माहौल बन गया था और इस बीच डॉ. सुब्रह्मयण्म कह रहे थे, "ऐसी ही तो जिंदादिली चाहिए मुझे अपने मरीजों में।" और हम एक बार फिर से मुसकरा पड़े।

बूढ़ा-बचपन

"इन्हें चाहिए स्पर्श का धन, सहानुभूति का ऐशो-आराम, शब्दों की सुविधा, जो हम इन्हें नहीं दे पा रहे हैं। यह ठीक है कि वे चाहते थे कि तुम उस पर पहुँच जाओ, जो सर्वोच्च हो, पर साथ ही वे अभी भी अपनी गोद तुम्हारे लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं, तुम बड़ी-बड़ी गाड़ियों में घूमो, पर तुम्हारे साथ पैदल दो कदम चलने को भी वे लालायित हैं।

अपनी जुबाँ की ताकत उन माँ-बाप पर मत आजमाओ, जिन्होंने तुम्हें बोलना सिखाया है।

…अपनी फटकार का चाबुक उन पर मत लहराओ, जिन्होंने तुम्हारी गलतियों पर भी तुम्हें गले लगाया था।

…उन्हें प्रेम की चाशनी में डुबाओ, जिन्होंने कभी तुम्हें स्नेह के समंदर में तैरना सिखाया था।"

और फेसबुक में यह सब पढ़कर उस समय मैं शर्म के मारे गढ़ा जा रहा था।

कभी-कभी ऐसा भी होता है

एक-दूसरे को झेलते-कोसते, एक-दूसरे का मखौल उड़ाते अंततः वे दोनों अपनी चिरयात्रा पर एक साथ चल पड़े। जो कभी साथ बैठकर ढंग से हँस-बोल भी न सके थे, वे संग-संग इस दुनिया से प्रस्थान कर रहे थे। मनों में भले ही उनके तलवारें खिंची हुई थीं, पर बाहर से वे दोनों बहुत ही शिष्ट-सज्जन एवं सौजन्यता से भरे हुए दिखाई देते थे। जिन्हें कभी एक-दूसरे के चेहरे देखने से भी नफरत होती थी, वे आज खँडहर जैसे हाते के गिरते ही खुद भी धराशायी होकर ढेर सारे मलबे के बीच दबे पड़े थे।

फिर क्या था, साथ-साथ उनका क्रियाकर्म हुआ और साथ-साथ अंतिम विदाई। दोनों के मृत शरीरों से लिपटकर उनके चाहनेवाले रो रहे थे, पर हंस! वह तो कब का अपनी अंतिम यात्रा पर निकल चुका था।

जीवित थे तो लगता था कि कौन किसको कितनी खरी-खोटी सुना दे, पर अब; अब तो साथ चलना उनकी मजबूरी थी। कोई साथी हो तो सफर भी ढंग से कट जाता है। यह सोच बिना किसी लड़ाई-क्लेश के वे दोनों आगे बढ़े चले जा रहे थे। राह में काँटे मिले, एक ने साफ किए और दूसरा उस साफ रास्ते पर चलता गया। इस तरह से उनका रास्ता पार हुआ। आग का दरिया भी उन्होंने मिलकर पार किया। आज वे भूल गए थे कि ये तो वही लोग हैं, जो कभी दिलों में एक-दूसरे के लिए नफरत भरे थे और बाहर से हमेशा शांति बनाए रखते थे, पर यहाँ तो कोई और साथी न था, फिर सफर में जो मिल जाए, उसी का साथ अच्छा! सोचकर वे कुछ और आगे बढ़ चले, वैतरणी नदी के तेज बहाव को देख वे एक क्षण को ठिठके। उस वक्त नदी की प्रचंडता उनके मन में भय पैदा कर रही थी, पर कहीं एक-दूसरे के सामने कमजोर न पड़ जाएँ, यह सोचकर वे धीर-गंभीर बने रहे। उन्होंने कामधेनु को पुकारा, पर वह न आई···दुबारा पुकारने पर भी जब वह न आई, तब उनके बचपन के संस्कार जागे। बचपन में पढ़ी एक कहानी उन्हें याद हो आई कि कैसे अंधे और लूले ने एक-दूसरे पर चढ़कर नदी पार की थी। अंधे की पीठ पर लूला बैठा उसे रास्ता दिखाता जाता और इस प्रकार से उन्होंने रास्ता पार कर लिया।

तभी पहला दूसरे की पीठ पर जा चढ़ा और दोनों मिलकर ब्रह्मनगरी पहुँच गए।

जीवन-मृत्यु

घंटी बजते ही सारंगी ने दरवाजा खोला। सामने खड़े सफाचट सिर वाले युवक को देखकर एकाएक तो वह उसे पहचान ही नहीं पाई। फिर जैसे ही उसे पहचाना तो भौचक्की सी खड़ी रह गई। वक्त के साथ कितना कुछ बदल जाता है? यह सोचती हुई वह उस युवक के साथ घर के अंदर हो ली।

वह अपने बेड पर चित्त लेटी थी। बाकी बची खाली जगह पर वह आ पसरा उलटा। अपना सिर उसने उसके सीने पर टिका दिया। वह धीरे-धीरे उसके माथे पर अपनी उँगलियाँ घुमाने लगी। ऐसा लगता था कि अतीत संबंधों की महक उसकी साँसों को महका रही है, जिस महक का मुकाबला कोई नहीं कर सकता है, पर आज वह चुप था।

"तुम्हारा माथा कितना चौड़ा है।" वह बोली, "तो?" "और बाल भी कितने प्यारे हैं।" "रहने भी दो न!" कुछ बेरुखी से वह बोला। अबतक वह तकिया उठाकर पलंग के किनारे जा लेटा था। रह-रहकर मन में अनेक खयाल आ रहे थे, 'क्यों होता है इनसान का जन्म और क्यों मरता है आदमी? क्या इसी का नाम है जिंदगी? ऐसी जिंदगी भी कोई जिंदगी होती है भला?' लेकिन उस वक्त वह अपने होनेवाले बच्चे की कल्पना कर सिहर उठा था।

तभी उसे सारंगी की प्यार भरी आवाज सुनाई दी—"चाहे जो हो, तुम्हारी आँखों में मेरे लिए बेइंतहा प्यार छुपा हुआ है।" कहते हुए उसने उसकी आँखों को चूम लिया था। "पर माँ!" वह बस इतना ही कह पाया था कि माँ का उदास चेहरा देखकर आगे कुछ न बोल सका था वह उस वक्त। "लो, कंबल ओढ़ लो, तुम्हें जाड़ा लग जाएगा!" बस, इतना ही बोल सका। सारंगी ने उसकी सहज चमकती आँखों में झाँका, बिल्कुल झील के ठहरे पानी सी निश्छल आँखें थीं उसकी। प्यार से उसने जवान बेटे को देखा, हौले से उसके कंधों को सहलाया, और फिर एक बार आँखों को चूमकर बोली, "पापा के जैसा तू भी मेरे प्रति बड़ा केयरिंग है रे, इसी दिन के लिए तो इनसान बच्चे पैदा करते हैं।" उस वक्त माँ के चेहरे पर छाए संतुष्टि के भावों को देखकर उसकी आँखें छलछला उठीं। अबतक उसे अपने सवालों के जवाब मिल चुके थे।

आत्ममुग्ध

वह व्यक्ति अकसर झील के किनारे बैठा करता था। एक दिन झील के पानी में उसने अपना अक्स देख लिया। अपने सुंदर रंग-रूप को देखकर वह इतना मुग्ध हो गया कि अपनी सुध-बुध ही खो बैठा और झील में डूब गया। उसकी मौत के बाद वनदेवियाँ झील के पास आईं। झील का रोते-रोते बुरा हाल था। अबतक उसका पानी खारा हो चुका था। वनदेवियों ने झील से कहा, "हम जानते हैं कि तुम्हें उसकी मृत्यु का सबसे ज्यादा दु:ख है, क्योंकि तुमने उसकी सुंदरता को सबसे पास से निहारा था, जबकि हम तो दूर से ही उसे देखा करती थीं; लेकिन एक सवाल है कि क्या वह सचमुच सुंदर था?"

चौंककर झील ने पूछा, "क्या वह सचमुच सुंदर था?"

वनदेवियों ने कहा, "तुमसे बेहतर कौन बता सकता है?"

यह सुनकर कुछ पल के लिए झील चुप रही और फिर बोली, "मैं नहीं जानती कि वह कैसा था! मैं तो इसलिए रो रही हूँ कि उसके न रहने पर मेरी सुंदरता को भला कौन निहारेगा?"

अधूरा स्वप्न

"मैं अभी स्टॉफ रूम में बैठा ही था कि तभी नजदीक आकर उसने मेरे पैर छुए और रुआँसा होकर बोला, "सर, अब मैं आगे और पढ़ नहीं सकता!" उसकी यह बात सुन मैं चौंका, मैंने उसकी आँखों में झाँका, उस समय उसकी समस्त वेदनाएँ बाहर निकल जाने को व्याकुल थीं।

एक क्षण को तो मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि मलय जैसा काबिल लड़का आखिर क्यों अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देना चाहता है? मैंने पूछा, "क्यों?"

वह बोला, "सर, पिताजी का साया बचपन में ही मेरे सर से उठ गया था। अकेली विधवा माँ ने न जाने कितनी मुश्किलों से मुझे पालकर बड़ा किया। घर पर पैसे की तंगी थी, अत: माँ काम में कुछ ऐसे डूबी कि उसने अपने अरमानों को ही डुबोकर खत्म कर डाला। उसका तो बस एक ही सपना था कि किसी तरह मैं पढ़-लिखकर बड़ा हो जाऊँ।" यह कहते हुए उसकी आँखें भर आईं, "पर अब जिंदगी के थपेड़े झेलते हुए वह थकने लगी है, आँखों की ज्योति भी कम हो चली है। काम करते हुए उसके हाथ काँपने लगते हैं। कमजोरी बदन में इतनी है कि थोड़ा सा भी चलने पर हाँफने लगती है, सर जी। माँ की ऐसी दुर्दशा अब मुझसे देखी नहीं जाती है। अब मैं माँ का ठीक से इलाज करवाऊँगा और माँ को कोई काम नहीं करने दूँगा। बारहवीं पास हूँ। अपने कला-कौशल को बढ़ाकर कुछ-न-कुछ तो कर ही लूँगा।"

मैंने कहा, "पर तुम्हारे डॉक्टर बनने के सपने का क्या होगा?" वह बोला, "सबकुछ याद है, सरजी! पर जब तक सपना पूरा होगा, तब तक पता नहीं माँ···!" कहकर रुआँसा हो उठा। "सर, कमा तो फिर भी लूँगा, पर माँ तो फिर न मिलेगी!" यह कहते हुए उसकी आँखें फिर से आँसुओं से भीग गईं। उस समय पीड़ा की परछाईं ने उसके चेहरे को ढक लिया था। इससे पहले कि मैं उससे कुछ और कहता, वह वहाँ से जा चुका था।

❑

अपने-पराए

मेरे बेटे-बहू काम के सिलसिले में न्यूयॉर्क गए और वहीं बस गए। मैं और मेरी पत्नी गाँव में अकेले रह गए। मैं हमेशा अकेलेपन का रोना रोता रहता। एक बार मैं अपने बगीचे में टहल रहा था कि एक साइकिल सवार नवयुवक मेरी चारदीवारी की ओर से गुजरा। न जाने क्यों वह अनजान-सा नवयुवक मेरे पास आया और मुझसे कुशल-क्षेम पूछने लगा। मुझे बहुत अच्छा लगा और मैंने तुरंत उससे कह दिया कि अपना बेटा तो विदेश जाकर रम गया है और तुम पराए होकर भी अपनों की तरह मेरा हालचाल पूछ रहे हो। थोड़ी देर बाद मैं उसके सामने भी अपने अकेले होने का रोना रोने लगा। इस पर उसने मुझे प्रसन्न करने के लिए कई किस्से सुनाए।

पहली मुलाकात में ही वह लड़का मुझे आत्मीय लगने लगा था। उस दिन आधे घंटे का समय उसके साथ किस तरह बीत गया, मुझे पता ही न चला। बातचीत के क्रम में उसने बताया कि वह बीए पास है और इस रास्ते से होकर रोज शहर दूध बेचने जाता है। अब तो मैं रोज उसका इंतजार करने लगा। पूरे दिन मैं योजना बनाता रहता कि मैं किस मुद्दे पर उससे कुछ अपनी कहूँगा और कुछ उसकी सुनूँगा। धीरे-धीरे मैं अपने अकेलेपन से निकलने लगा। यह अपनेपन का अहसास कुछ होता ही ऐसा है कि इसके बाद से मैं चीजों और परिस्थितियों को सकारात्मक ढंग से देखने लगा और इस कारण उस युवक में अपने बेटे की छवि ढूँढ़ने लगा।

अजनबी

तुम किससे सबसे ज्यादा प्यार करते हो, मुझे बताओ, ओ रहस्मयी मानव!—अपने पिता, अपनी माँ, अपने भाई या फिर अपनी बहन को?"

"वो तो सभी करते हैं?"

"फिर, फिर क्या अपने दोस्तों को प्यार करते हो?"

"वह तो मनुष्य का सहज स्वभाव है।"

"तो क्या देश तुम्हारे लिए सर्वोपरि है?"

"भला किस भले आदमी को अपने देश पर गर्व न होगा!"

"तो क्या सौंदर्य तुम्हें प्यारा है?"

"सौंदर्य, वह जो दिव्य और अमर है, उसे तो मैं अवश्य प्यार करूँगा।"

"तो फिर स्वर्ण मुद्राओं से करते हो प्यार?"

"स्वर्ण मुद्राओं से तो मुझे उतनी ही नफरत है, जितनी कि तुम्हें ईश्वर से।"

"कोई कैसे समझ सकता है अजनबी तुम्हें? बड़े अनोखे प्राणी हो तुम। भला बताओ तो सही कि किसे प्यार करते हो सबसे ज्यादा तुम?"

"मुझे बादलों से प्यार है। इन सुहानी घटाओं से भी प्यार करता हूँ मैं, साथ ही इधर-इधर गुजरती बदरियाँ भी मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं; पर सबसे ज्यादा तो मैं उसे प्यार करता हूँ, जो मुझे प्यार करता हो।"

बादल और धरती

सुंदर सी हरी-भरी धरती के ऊपर आसमान में एक बड़ा सा बादल रहता था। एक दिन उसे आसमान में अपने ही पास उड़ता हुआ एक और बादल दिखाई दिया, जो आकार में उससे भी बड़ा था। उस बादल को देखकर उसे ईर्ष्या होने लगी। खुद को उससे भी बड़ा बनाने के लिए उसे एक उपाय सूझा, उसने निश्चय किया कि इस बारिश वह बगलवाले बादल से भी बड़ा हो जाएगा।

अत: इस बरसात उसने पानी नहीं बरसाया, जिसके कारण धरती सूखने लगी, पेड़-पौधे भी सूख गए और तालाब का पानी भी। बरसात न होने से अब तो सारी जमीन ही मरुस्थल बन गई थी। अज्ञानतावश बादल को अहसास ही न हुआ कि उसे बढ़ने के लिए पानी कहाँ से मिलेगा? उसने तो बरसना ही भुला दिया था, फिर उसको पानी कैसे मिलता? कृपणतावश कुछ समय बाद वह इतना हलका हो गया था कि हलके से हवा के झोंके से वह इधर-उधर हो गया और उड़ते-उड़ते एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ हरियाली-ही-हरियाली थी। अब उसे अपनी गलती का अहसास हो चला, भावनाओं का बाँध टूट पड़ा और बड़ी जोर से बादल बरस पड़ा, धरती का पानी भी भाप बन उससे मिलने को तेजी से चल पड़ा, फिर क्या था, पानी पाकर बादल फिर से बड़ा हो गया।

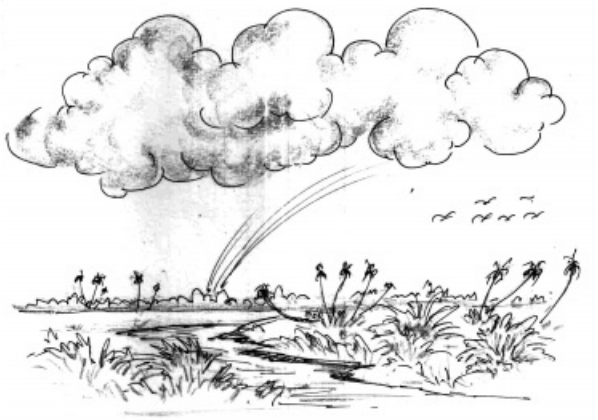

अब तो उसे अपनी गलती का अहसास हुआ कि किस तरह अपने स्वार्थवश उसने धरती को सुखा दिया था। घना होकर वह फिर से सूखी धरती की तरफ पहुँचा तथा इस बार खूब जमकर बरसा एवं सात दिनों तक बरसता ही रहा, तभी वहाँ सूरज की किरणों से एक सुंदर सा इंद्रधनुष बन गया और चारों ओर सुंदरता बिखर गई।

अब तक बादल समझ चुका था कि जो पानी वह धरती को देता है, वही भाप बनकर उसके पास वापस आ जाता है। अब तक वह जान चुका था, उसका अस्तित्व बरसने में है, न कि संचय करने में।

बुढ़ापे की माँ

"माँ, वह भी बुढ़ापे में? क्या मजाक है भाई! भला किसके माँ-बाप बुढ़ापे तक साथ देते हैं? उन अनाथों से पूछो, जिनके माँ-बाप उन्हें जन्म देते ही उनसे दूर हो जाते हैं या दुर्भाग्यवश उन्हें यहीं कहीं मरने को छोड़ देते हैं। चलिए, हटाते हैं ये सब बातें, कुछ और बातें करते हैं।"

उस दिन सुयश ने अपने बूढ़े माँ-बाप की देखभाल में पत्नी को लापरवाही करते देख बड़े प्यार से समझाना चाहा, "सुरभि, तुम्हीं बताओ भला, इस दुनिया में हमारे अलावा इनका है ही कौन? अत: हमें इनकी अच्छे से देखभाल करनी चाहिए।"

उत्तर में सुरभि ने सास-श्वसुर द्वारा अपने साथ किए गए दुर्व्यवहार की गाथा फिर से दोहरानी चाही। प्रत्युत्तर में सुयश बोला, "छोड़ो, हटाओ सुरभि! दूसरा कुछ भी करे, हमें तो अपने फर्ज याद रखने चाहिए, और रही बात उनके द्वारा किए गए व्यवहार की, तो बुढ़ापे में आदमी बिल्कुल बच्चा बन जाता है। आजतक अपने प्रति भेदभाव भरे व्यवहार को याद कर नाराज न हो।" कुछ तेज आवाज में वह बोली, "माना कि बुढ़ापे में आदमी बच्चा बन जाता है, पर बुढ़ापे में उनके लिए माँ-बाप कहाँ से लाऊँ मैं? ब्याह कर लाए थे, तब सोचा होता कि यही बहू एक दिन माँ के समान तुम्हारी देखभाल करेगी। (कुछ मुँह बनाकर) तब तो उन्हें 'मेरा मुन्ना! मेरा पप्पू! करने से फुरसत नहीं थी।" कुछ अधिक गुस्से के साथ, "तो सँभाले न पप्पू माँ-बाप को अपने।" तभी दूसरे कमरे से "बहू, ओ बहू! जरा पंखा तो चलाना!" की आवाज सुन वह उसी दिशा में दौड़ पड़ी।

चर्चा लूट की

"26 में भरेगा।"

"37 में भरेगा।"

"मेरी मानो, 17 में भरेगा।"

"अरे छोड़ो, तुम्हारे 26, 37, 17 अपना दावा है कि 11 में ही भर जाएगा।"

"क्या बात है भइया?" चार सफेदपेशों को चौराहे पर इस तरह गरमागरम बहस करते देख सड़क पर खाना खा रहे एक गरीब से रहा न गया और पूछ बैठा, "कौन हो आप लोग और क्यों झगड़ रहे हो?"

सफेदपोशों में से एक ने ललचाई नजरों से गरीब को देखते हुए कहा, "अरे काका! नहीं पहचाना हमें, हम नेता हैं और आकलन कर रहे हैं तुम्हारी भोजन की थाली का कि गरीब का पेट कितने रुपए में भर जाता है।"

सुनते ही गरीब ने अपनी थाली उठाई और वहाँ से सरपट भागा।

छोटा कमरा

एक बार यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात एक छोटे से कमरे का निर्माण करवा रहे थे, तभी किसी ने उनसे सवाल किया, "आप यह कमरा क्यों बनवा रहे हैं?" तो सुकरात ने उत्तर दिया, "मित्रों के लिए बनवा रहा हूँ।" उस व्यक्ति ने सुकरात से फिर कहा कि "इतना छोटा कमरा? वह भी मित्रों के लिए?" इस पर सुकरात ने कहा कि "यह भी भर जाए तो मुझे खुशी होगी।" और कहा, "सच्चे प्रेमी व श्रेष्ठ मित्र काफी कम होते हैं, एक छोटा सा कमरा भरने लायक भी नहीं।"

दूर की आवाज

एक साहित्यिक गोष्ठी में गिरते-सँभलते रिश्तों पर विचार-विमर्श चल रहा था, पुरुष साहित्यकारों का मानना था कि महिलाओं के पढ़-लिख जाने तथा नौकरी करने के कारण रिश्ते सँभाले नहीं सँभलते। बीच में ही एक महिला लेखिका बोली कि औरत ने घर की चहारदीवारी में खुद को उपेक्षित पाया, अत: चाहे-अनचाहे वह बाहर निकलने को उद्यत हो उठी। यों भी देखा जाए तो नौकरी दहेज-प्रथा पर आधा-पूरा प्रहार है। एक ने कहा कि हमारी स्वार्थपरता ही हमें रिश्तों से दूर ले जा रही है। कुछ ने तो मोबाइल फोन तथा लैपटॉप को ही दोष दे डाला।

एक महोदय का मानना था कि ये बढ़ा हुआ क्लब कल्चर तथा किटी पार्टी हमें अपनों से दूर लिये जा रहा है। कुछ का मानना था कि औरतों में सहनशक्ति का अभाव ही घरों में दूरियाँ बढ़ाए हुए है।

वजह चाहे जो भी हो, पर समाधान तो तलाशना ही था। प्रस्तोता ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा कि एक रिश्ता बनाने में हमें बड़ा समय लग जाता है, कभी-कभी तो हमारे लिए दस सालों का समय भी कम पड़ जाता है और हम निहित स्वार्थ तथा अहं की भावना के वश में होकर एक झटके में रिश्तों को तोड़ देते हैं।

तभी दूर से एक आवाज आई कि नहीं सरजी, रिश्ते बनाने में इतना वक्त नहीं लगता, कुछ रिश्ते तो मिनटों में बन जाते हैं और कुछ को बनाने में सालों लग जाते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि सामनेवाला कितना सरल या जटिल है, अत: जब दोनों तरफ से व्यवहार में सरलता तथा सच्चाई होती है, तब रिश्ते बनते तथा निभते देर नहीं लगती, इसके विपरीत देर से बने रिश्तों में व्यवहार में आई जटिलता के कारण बनने और बिगड़ने में भी देर नहीं लगती। बात समाप्त होते-होते सभागार में तालियाँ गूँज उठीं।

अनुपमाजी

"अनुपमाजी! आपके दोनों बच्चे बाहर जा बसे और आप दोनों पति-पत्नी यहाँ अकेले?" कुछ संकोच के साथ···"कैसा लगता है?" मेरे मनोभावों के विपरीत चहकती हुई वह बोली, "अच्छा, बहुत, अच्छा लगता है। सच पूछो तो इन परिस्थितयों में हम दोनों बहुत सारे महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। मैं यहाँ पर अपना गेस्टहाउस चलाते हुए समाज-सेवा में लगी हुई हूँ। कुछ चहककर···, "मेरे एक बेटा और एक बेटी थोड़ी न है," ऑरफनेच हाउस के बच्चों की तरफ प्यार भरी निगाहें डालते हुए, "अगर मेरे वे बच्चे यहाँ होते, तो क्या मैं अपने इतने सारे बच्चों की माँ बन पाती?"

"फिर गेस्ट हाउस से इतनी तो इनकम हो ही जाती है कि चाहे हर महीने फॉरेन घूमो, कोई समस्या नहीं। वैसे मैं साल में तीन बार अलग-अलग देशों की सैर भी करती हूँ और दो महीने अपने बच्चों के साथ क्वालिटी समय भी बिताती हूँ। इस प्रकार के निर्णय से बच्चों का कॅरियर भी बेहतर बनता है और अपना आत्मसम्मान भी जिंदा रहता है।" भौचक्की हुई मैं उस वक्त उसकी बातें सुन रही थी। तभी वह बोली, "एक बात और, हम अपने स्वास्थ्य के साथ कहीं कोई समझौता नहीं करते, अत: सुबह-सवेरे मॉर्निंग वॉक पर चले जाते हैं और फिर घर पर आकर योग-प्राणायाम अवश्य करते हैं।"

उस क्षण मुझे अपनी संकुचित मानसिकता पर शर्म आ रही थी; परंतु इतना अवश्य था कि मैंने एक नई तरह से जीवन का आकलन करना सीख लिया था।

गिद्ध

घने जंगल में उड़ते हुए गिद्ध की दृष्टि जाने कहाँ से अखबार के उस पन्ने पर जा पड़ी, जिस पर लिखा था, "भरे बाजार तीन लड़कों ने गिद्ध के समान लड़की की बोटियाँ नोंच डालीं।"

यह देख उड़ता हुआ गिद्ध कुछ नीचे उतर आया और अपने बड़े-बड़े नुकीले पंजों से अखबार को दबाकर फिर से उस वीभत्स खबर को पढ़ने लगा। आगे लिखा था, "और उसका क्षत-विक्षत शव दूसरे दिन झाड़ियों के अंदर पड़ा मिला।" यह खबर पढ़ उसका माथा ठनका, उस समय एक अजीब सी बेचैनी ने उसे आ घेरा। उसके दिमाग में एक अजीब सी हलचल मच गई, उसने साथी गिद्धों को पुकारा, और कुछ ही क्षणों में शोर मचाते गिद्ध पूरे आसमान में छा गए। तेज आवाज में नेता गिद्ध चिल्लाया, "बहुत हो गया हमारा शोषण!" फिर अखबार के फटे टुकड़े को लहराता हुआ बोला, "देखो, क्या लिखा है—लड़कों ने गिद्ध के समान लड़की को नोंच डाला। भला यह भी कोई बात हुई?" यह कहते हुए अपने दोनों पंजों को तेजी से झटकाता हुआ वह एक बार फिर से चिल्लाया और उसके समर्थन में अन्य गिद्ध भी चिल्लाने लगे।

तभी उनमें से इतिहास मर्मज्ञ एक गिद्ध चिल्लाया, "इतने नीच नहीं हैं हम; जब सीता मैया का अपहरण कर रावण उन्हें लंका लिये जा रहा था, तब हमारे प्रपितामह जटायुजी ने उनकी रक्षा करने हेतु लहूलुहान होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था, और ये अखबारवाले इन नीच लड़कों की तुलना हमसे करते हैं?" एक बार फिर समवेत स्वरों में वे सभी चिल्लाने लगे।

दूसरा चिल्लाया, "हमारी दृष्टि की तारीफ तो सारी दुनिया करती है और एक ये हैं…?" कह गुस्से में आकर अपने पंख फड़फड़ाने लगा।

तभी उनके बीच से एक जागरूक बूढ़ा गिद्ध उठकर बोला, "तुम सबकी बातों में दम है मेरे बच्चो, तुम सभी को अपने हक में जरूर आवाज उठानी चाहिए। माना कि हम नरभक्षी हैं, मांस हमारा प्रिय आहार है, पर, पर हम तो मरो को खाते हैं और ये हरामी की औलादें तो जीतों को ही खा डालना चाहती हैं।"

यह सुन सभी गिद्ध उसके समर्थन में फिर से पंख फड़फड़ाने लगे और इस प्रकार वातावरण में एक अजीब सा कोलाहल छा गया।

हिंदी की कक्षा

उस दिन हिंदी की कक्षा में मुहावरों का वाक्य प्रयोग करना सिखाया जा रहा था, लाख कोशिश करने के बावजूद दीप्ति आज भी क्लास में पाँच मिनट लेट पहुँची। अचानक आए व्यवधान को देख पढ़ाते हुए टीचर एक मिनट को रुकी, फिर दीप्ति की ओर देखकर बोली, "क्यों लेट थी?" वह अब भी ठंड़ से सिकुड़ी चली जा रही थी, तभी ब्लैक बोर्ड पर लिखे मुहावरे की ओर देखकर टीचर बोली, "इसका वाक्य प्रयोग बना सकती हो?" अनायास ही दीप्ति के मुँह से निकल पड़ा, "जाड़े में ठंडे पानी से नहाने पर हम सभी को नानी याद आ जाती है।" इतना सुनना था कि क्लास में हँसी का फव्वारा फूट पड़ा, अब तो टीचरजी भी मुसकराए बिना न रह सकी और सामने बैठी लड़कियों की तरफ मुखातिब होकर बोली, "इसे कहते हैं व्यावहारिक जीवन में हिंदी का प्रयोग।"

हम औरतें

बेटों को ब्याहना भी कोई इतना आसान काम नहीं होता, नए-नए अनुभव, नई बातें और ऊपर से पराई बेटियों का साथ। उफ, कभी-कभी तो जान ही निकल जाती है, पर ये मर्द हैं न कि हम औरतों की समस्याओं को हवा में ही उड़ा देते हैं।

दिव्या अभी नई-नई सास बनी थी, नई बहू, नया समायोजन। ऐसे ही एक दिन जब किसी बात पर वह बहू से उलझ गई, तभी उसका पति शरद उसे उलाहना देता हुआ बोला, "तुम्हारी तो आदत ही पड़ गई है हर किसी से उलझने की, पहले माँ के साथ और अब बहू के पीछे पड़ी हो!"

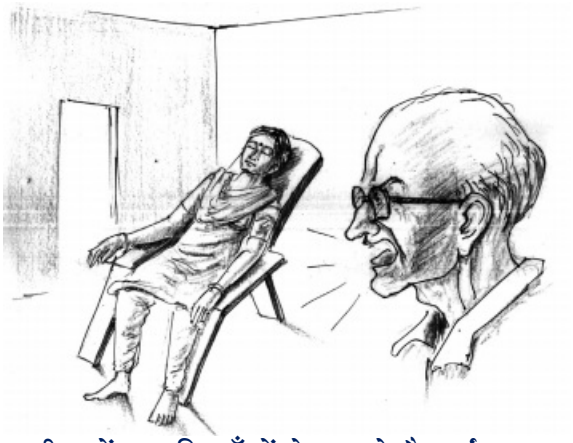

न जाने कितनी सुलझी-अनसुलझी यादें उसकी आँखों के सामने तैर गईं। उस समय उसकी भावनाएँ आहत हो चली थीं और देखते-ही-देखते आँखें बरबस टपक पड़ीं। अपमान और आक्रोश में भरकर वह चिल्लाई—

"तुम औरतें ऐसी, तुम औरतें वैसी, कहना बड़ा आसान है, पर तुम्हें क्या? तुम मर्दों को तो हमेशा अपनों के साथ रहना होता है और एक हम है कि मरी रहती हैं बेगानों को अपना बनाने में। पहले सास-ननदों को अपना बना-बनाकर बेदम हुई और अब बहू के लफड़ों में फँसी हुई हूँ, कहीं भी चैन नहीं। मजा तो तब आता, जब तुम खुद श्वसुर के घर में रहकर, दामाद को विदा करवाकर लाते और वह दामाद तुम्हारी बेटी से लेकर तुम्हारा व्यापार, तुम्हारा घरबार—सब तुमसे ऐंठकर तुम्हारे स्वभाव में ही सौ कमियाँ निकालता, तब मैं तुमसे पूछती कि बताओ हम औरतें कैसी?" यह कहते-कहते निढ़ाल होकर वह पास पड़ी आरामकुरसी पर जा गिरी।

जानती हो माँ

नाराज हूँ तुमसे। तुम्हारी आँखों में तैरते हर सपने को शिद्दत से जिया है मैंने, और जब उसकी कामयाबी तुम्हारी आँखों से देखने की बारी आई तो तुम थी ही नहीं···बाँटने के लिए। रिश्तों की लंबी फेहरिस्त है पास मेरे···पर मन की छोटी-छोटी बातें किससे कहूँ? किसे बताऊँ कि जिंदगी की रेस पूरी करते-करते थक गई हूँ मैं? किससे कहूँ कि थोड़ा सुस्ताने दो मुझे? किससे कहूँ कि आज मेरा मन भारी है···? खुली आँखों से सब भरा-पूरा दिखता है, पर बंद आँखों से सिर्फ तुम्हारा चश्मा, तुम्हारी दवाइयों का डिब्बा, तुम्हारी दी हुई किताबें, तुम्हारा दिया हौसला और तुम्हारी वह झाँकती सी आँखें, जिनमें मेरे लिए चिंता बसती थी। बस, वही तो दिखती हैं, इसलिए जी नहीं चाहता कि अपनी आँखें खोलूँ, माँ। बहुत दर्द जम गया है मुझमें। एक बार मिल जाओ तो थोड़ा पिघल लूँ और फिर से तुम मुझे गढ़ दो।

जीवन-नृत्य

सुबह होते ही फकीर झुगान जोर से पुकारते, "झुगान, झुगान!" उस वक्त सूना होता उनका कक्ष, क्योंकि कक्ष में उनके सिवाय कोई दूसरा नहीं होता था। वहाँ सूने कक्ष में स्वयं की ही गूँजती आवाज को वे सुनते, "झुगान, झुगान!" उनकी आवाज को आसपास के सोए वृक्ष सुनते तथा वृक्ष पर सोए पक्षी भी सुनते। निकट ही सोया सरोवर भी सुनता और फिर वे स्वयं ही उत्तर देते, "जी, गुरुदेव! आज्ञा करें गुरुदेव!" उनके इस प्रत्युत्तर पर वृक्ष हँसते, पक्षी हँसते। सरोवर हँसता। फिर वे कहते, "स्वयं के प्रति ईमानदार बनो झुगान।" पलटकर स्वयं ही कहते, "जी, गुरुदेव!" इसके बाद वे कहते, "अगर स्वयं को पाना है तो दूसरों की बातों पर ज्यादा ध्यान मत देना।" यह सुन वृक्ष भी चौंककर स्वयं पर ध्यान करने लगते और झुगान कहते, "जी हाँ।" फिर इस एकालाप के बाद झुगान कक्ष से बाहर निकलते तो वृक्षों, पक्षियों और सरोवरों से कहते, "सुना तुमने?" हँसते और फिर अकेले ही ढेर सारे कहकहे लगाते।

तभी फिर टकटकी लगाए आकाश को हृदय में उतरने देते। शीघ्र ही उनके बीच से परदा उठने लगता। भीतर और बाहर का आकाश एक-दूसरे का आलिंगन करने लगता। इस प्रकार उन्हें स्वयं को मिटने में सहायता मिलती। अनायास ही आकाश पर ध्यान करते-करते उनका तन-मन नृत्य को आतुर हो जाता और वे पागलों की तरह नाचने लगते, क्योंकि इस नृत्य से उन्हें जीवन-रूपांतरण की अनूठी कुंजी हाथ लग जाती है। सभी अणु-परमाणु नृत्य में लीन हैं। ऊर्जा अनंत रूपों में नृत्य कर रही है, क्योंकि जीवन नृत्य है।

कानाफूसी

एक परिवार में शादी लायक कई जवान बच्चे कुँवारे बैठे थे। यह देख परिवारवाले परेशान थे, कोई इसे भाग्य का दोष बताता तो कोई करनी का और ज्यादा जानकार लोग इसे पितृदोष बताते, हर किसी के पास अपनी-अपनी कहानियाँ थीं। ऐसे करते हुए चार-पाँच साल और निकल गए, पर तब भी उनकी बात न बनी। अब तो वे एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप भी लगाने लगे थे।

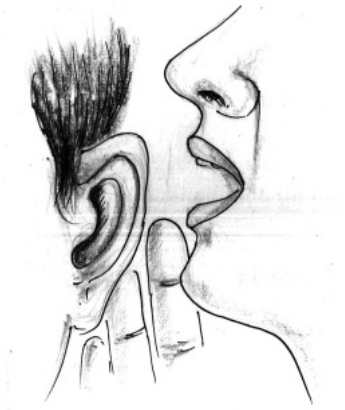

इस विषय को लेकर जब समाज में कानाफूसी होने लगी, तब एक सयाने बुजुर्ग बोले, "रिश्ते सँभाले थे कभी, जो आज रिश्तों की बातें करते हैं?"

क्यों बहकते हो तुम?

कभी देखा है भोर में हरसिंगार के फूलों को झरते हुए? टप-टुप, टप्प-टुप्प टपकते रहते हैं बेआवाज। लेकिन जैसे उनकी सुगंध तिरती सी आती है उनके साथ-साथ उनकी डाल से होते हुए नीचे मखमली दूब पर या सोंधी मिट्टी में गिरने तक और फिर अपने सफेद-सफेद मोती जैसे दाँत दिखाकर खिलखिला पड़ते हैं नारंगी फुनगी लगाए ढेरों-ढेर हरसिंगार के फूल। उनकी वह मुलायमियत, करारापन, चंचलता, खामोशी! कितना अद्‌भुत है न! और यहाँ-वहाँ डालों, शाखों में अटके-ठिठके फूल हमें बुद्‌धू बनाते हैं कि मैं तो अभी टपका ही नहीं। शैतान कहीं का! इनकी वह बच्चों जैसी हँसी! निर्मल-निर्दोष चेहरा! कभी चंचलता से भरी, कभी बेवजह की खमोशी! सबकुछ अनूठा, लेकिन बेहद प्यारा, बेहद सम्मोहक! अवश कर देनेवाला सम्मोहन! वशीकृत कर लेनेवाला सम्मोहन!

इसी सम्मोहन से आगे बढ़ती है अक्षरा की कहानी, अपनी ही खुशबू से मदहोश करती अक्षरा और ये शैतान फूल तथा इन्हें बेहद प्यार के साथ हौले से उठाकर अपने आँचल में भरती अक्षरा! कहना मुश्किल है, कौन है ज्यादा सुंदर? हरसिंगार या अक्षरा? कौन है ज्यादा कोमल? हरसिंगार या अक्षरा? किसकी सुंदरता, किसकी कोमलता देखनेवाले को ज्यादा सम्मोहित करती है? अक्षरा है भी बिल्कुल हरसिंगार के फूलों की तरह। न उन्हें अपनी खूबसूरती का अहसास है और न अक्षरा को। दोनों मन से खूब चंचल और खुश हैं, पर सामने से गंभीर बने रहते हैं। मगर ओस से भीगा-खिलखिलाता उनका मन क्यों हँसता रहता है हरदम? क्यों खुश रहता है मन? बस यों ही; हरसिंगार के टप-टुप, टप्प-टप्प, टुपक-टुपक टपकते फूलों की तरह!

हरसिंगार के फूल, जो यहाँ-वहाँ अटके रहते हैं शैतान बच्चों की तरह, इन-उन डालों पर, शाखों पर। इन्हें भी तो चुपके से उठा लेती है अक्षरा अपनी उँगलियों के पोरों से। जितने नाजुक हैं ये फूल, उतनी ही नाजुक हैं अक्षरा की उँगलियाँ और उतनी ही कोमलता है उन फूलों को अपनी हथेलियों में सँजोने में। कैसे अपनी उँगलियों और हथेली से गोल घेरा सा बना लेती है अक्षरा कि हरसिंगार उनके बीच तनिक भी दबते नहीं, बल्कि ढुल-ढुल ढुलकते रहते हैं अपनी पूरी चंचलता के साथ?

अरे, वह एक डाल या शायद छोटी-बड़ी कुछेक डालें, शाखाएँ और उनमें वही सुंदर सफेद नारंगी फुनगी लगाए हरसिंगार! उन्हें भी उठा लेती है अक्षरा। लेकिन वह डाल, वह भी शैतान है इन अटके फूलों की तरह! क्यों? क्योंकि वह पड़ोसी के घर की दीवार पर बड़े आराम से टिकी रहती है। टिकी ही नहीं रहती है, भोर के रेशमी अँधेरे में

अपनी शाखों से हरसिंगार टपकाती रहती है उस चहारदीवारी पर, कुछ चहारदीवारी के ऊपर, कुछ इस पार और शायद कुछ उस पार भी।

क्यों करते तुम माथा-पच्ची!

मोबाइल पर ढेर सारे व्हाट्सएप मैसेजेस डीलिट करते हुए उस वक्त मुझे बड़ी झल्लाहट हो रही थी। टेक्नोसेवी तो मैं जन्म से ही न था, फिर भी तो समय की माँग को देखते हुए, न चाहते हुए मोबाइल मेरे हाथ में आ ही गया था। तभी फिर से झल्लाते हुए मैंने कहा, "अजीब दिमाग खराब कर रखा है इसने! एक-एक कर मैसेज डीलिट करता हूँ। फिर से डीलिट करता हूँ, पर ये मैसेजेस तो खत्म होने का नाम ही नहीं लेते। सन् 2019 फिर 2018 और अब 2017 हे भगवान्! किन चक्करों में फँस गया हूँ मैं? कब तक यों ही माथा-पच्ची करता रहूँ?

यह सुन दिमाग को गुस्सा आ गया, डपटकर बोला, "खबरदार, जो एक भी शब्द आगे कहा।"

आगे वह बोला, "वर्षों से तुम भी तो मेरे अंदर क्या-क्या कूड़ा भरे हुए हो, जिसके भार के मारे मेरा तो सिर ही चकराए चला जा रहा है।"···फिर भी कुछ कहा मैंने तुम्हें। कभी-कभी तो नकारात्मक भावों के कारण सिर इतना भारी हो जाता है कि ठीक होने का नाम ही नहीं लेता है," फिर कुछ डपटकर, "मैंने कुछ कहा तुझे, नहीं न? तो फिर नाहक क्यों बड़बड़ाए चला जा रहा है?" आगे वह बोला, "और हाँ, ठीक से अपना काम किया कर। समय-समय पर इसके वीडियो हटा दिया कर, तो फिर काहे की माथा-पच्ची? और काहे की परेशानी!"

"और हाँ, कब से दर्द के मारे फटा जा रहा हूँ मैं। सुबह-सुबह मेडिटेशन कर मेरा भी बोझ हलका कर दिया करो यार!"

नन्हे-नादान

"माँ ! तुम कभी बूढ़ी मत होना।" माँ के माथे पर उभर आई लकीरों को हौले-हौले सहलाती हुई सुरभि बोली। बेटी का मन रखते हुए माँ मुसकराकर बोली, "ठीक है, मैं कभी बूढ़ी नहीं होऊँगी।"

शाम को सिद्धांत माँ के लिए एंटी-ऐजिंग क्रीम ले आया। माँ जब तक कुछ समझती, वह अपने नन्हे मुलायम हाथों से उसकी माथे की लकीरों पर क्रीम मलने लगा। प्यार और वात्सल्य के आँसू लिये वह चुपचाप आँखें बंद किए तकिये पर सिर रख बच्चों से क्रीम मलवाती रही।

क्या कहें वह इन नन्हे-नादानों से? कहीं बुढ़ापा और मृत्यु भी कभी किसी के रोके रुका है भला? एक क्षण को उसने आँखें खोलीं, पर उन दोनों बच्चों को अभी भी अपने समीप देख अबकी बार उसका मातृत्व छलक पड़ा।

देव-पितर

उस दिन पिच्सी मुझसे पूछ बैठी, "माँ, ये बताओ कि तुमने दादा-दादी की फोटो भगवान् जी के साथ मंदिर में क्यों लगा रखी है? नानी तो कहती है कि दादी आपके साथ मिसबिहेव करती थी और दादाजी भी दादी की बातों में आकर आपको बेवजह तंग किया करते थे, फिर बताओ न माँ! वे हमारे भगवान् कैसे हुए? कोई भी बैड मैनर्स वाला आदमी, जो खुद दूसरों पर डिपेंड हो, वह मरने के बाद भला कैसे इतना स्ट्रॉग हो सकता है?"

सुनने को तो मैं उसकी बातें सुन गई, पर उस वक्त मुझसे कुछ भी बोलते नहीं बन रहा था। बड़ी मुश्किल से बस इतना कह पाई कि "जा, तू जाकर अपना काम कर और मैं अपना काम करती हूँ।" और यह कह मैं मंदिर की ओर बढ़ गई।

राधा

घर पर काम करने के लिए आई कामवाली बाई से खाना-पीना, रहना-सहना इत्यादि सब बातें तय हो जाने पर मालकिन राधारानी ने पूछा, "अरे, तेरा नाम तो पूछना ही रह गया, भला क्या नाम है तेरा? किस नाम से तुझे पुकारूँ मैं और हमारे साहब?"

"राधा, राधा नाम दिया है माँ-बाप ने हमारा।"

"नहीं-नहीं, यह नाम नहीं चलेगा। इस नाम से तो साहब हमको बुलाते हैं।" चौंककर मालकिन बोली, "अच्छा ऐसा करते हैं कि आज से मैं तुझे 'रधिया' कहकर पुकारूँगी।"

"मालकिन, आप हमें किशन-प्यारी कहें तो कैसा रहेगा? इस बहाने सुबह-सुबह भगवान् का नाम भी आपकी जबान पर आ जाएगा।"

कुछ सशंकित होकर मालकिन मन-ही-मन सोचने लगती है 'किशन' नाम तो हमारे साहब का है, फिर इसको 'किशन-प्यारी' कैसे कह सकती हूँ? सबके सामने कहूँगी तो मजाक और बन जाएगा। "चल तुझे 'रद्धू' बोलूँ तो चलेगा?"

नौकरानी मन-ही-मन, 'नाम बिगाड़ने में बड़ा मजा आ रहा है; अच्छा-भला नाम हमका महतारी-बापू ने दिया है। 'किशन-प्यारी' कह देती तो क्या जबान घिस जाती? नहीं 'रधिया' कहेगी, 'रद्धू' कहने में अच्छा लगता है इनको। जाए ऐसी नौकरी भाड़ में 'बहुत देखी तुम्हारी जैसी राधारानी'।' "कल आऊँगी!" कहकर ठुमकती हुई वह वहाँ से चल दी।

रसोई में पकते खयाल

अपने ही खयालों में रसोईघर में खड़ी मैं न जाने क्या-क्या अटरम-पटरम सोचा करती हूँ। कभी सोचती हूँ कि कढ़ाई में सिंकती कचौड़ियों के बीच कोई एक कचौड़ी ऐसे क्यों विफर जाती है कि लगता है, जैसे उस पर मातारानी ही आ गई हो, और वह देखो गोलगप्पा, मुझे किसी ज्ञानी से कम सयाना नहीं लगता है, मानो वह हमें समझाना चाहता है कि खाओ तो पूरा खाओ गप्प से; अधूरा खाना है बेकार, बिल्कुल अधूरे ज्ञान के समान।

तभी मन में खयाल आता है कि यह प्रेशर-कुकर और राजनेता सब एक जैसे होते हैं, जब इन पर दबाव (चुनाव का) पड़ता है तो चिल्लाते हैं जोर से, और फिर भाप निकलते ही बैठ जाते है फुस्स से।

मेरे खयाल तो देखो—तभी खुले पतीले में चढ़े पालक के साग को देखकर खयाल आता है मुझे, 'अरे! यह तो चुनाव में उम्मीदवारों के समान बेवजह फुदकता है।' यह देखो, मैंने गैस धीमी कर उसके मुँह को छोटी थाली से ढक दिया और इस प्रकार इनका फुदकना बंद हो गया। यह देख खयाल आया, 'ऐसे ही इन उम्मीदवारों के मुँह पर लगा देने चाहिए ढक्कन; अन्यथा बेवजह उछल-उछलकर ये कर देंगे आसपास का माहौल गंदा।'

उधर गरम तेल में पड़ी राई कुछ यों चटकी, जैसे चुनाव के समय जल्दी-जल्दी खबर देने के लिए मीडिया मचल उठता है।

तभी मैंने फूली और पिचकी दो रोटियों को बात करते सुना। पास रखी पिचकी रोटी चूल्हे पर फूली रोटी से कहती है, "अपने रूप पर फूलकर चाहे तू कितनी भी कुप्पा हो जा, पर आखिरकार पकड़ी तो तू भी चिमटे से ही जाएगी!"

तभी दौड़ते हुए बिल्ली के बच्चे ने मेरा ध्यान भंग किया और मैं लौटकर फिर से अपनी दुनिया में आ पहुँची।

छूमंतर

किसी ने कहा, "म से माँ होती है तो किसी ने कहा म से मकान होता है। पर उसने कहा कि गलत, बिल्कुल गलत!" माँ तो पूरे घर की नींव होती है।" तभी सामने वाला बोला, "अरे, नहीं न! वह तो हमारी छत, छत है।" तभी, पड़ोसी आ धमका···बोला, "वह तो घर का पिलर होती है, जिस पर घर की पूरी-की-पूरी छत टिकी होती है।" तभी कोई बोल पड़ा, "जमीन होती है माँ।" तो दूसरा बोला, "नहीं रे! दीवार के जैसी प्रोटेक्ट करती है माँ हम सभी को।" और तभी हवा के तेज झोंके से घर की खिड़की बज उठी। सामने वाला चुन्नू बोला, "कहा था न! माँ हमारे खिड़की-दरवाजे—सबकुछ होती है।"

तभी उधर से उछलती हुई गुड़िया आई···चहकती हुई सी बोल पड़ी, "अरे, नहीं न! वह तो पूरा-का-पूरा घर होती है।" और यह कह वह हवा के जैसी छूमंतर हो गई।

वास्तुशास्त्र

नवरात्र के मौके पर एडिशनल कमिश्नर साहब के घर मेरा जाना हुआ। चारों तरफ पूजा-पाठ तथा भक्ति का मौहाल था, क्योंकि आज वहाँ एक बहुत बड़े यज्ञ के अलावा नए बने मंदिर में देवी-देवताओं की 'प्राण-प्रतिष्ठा' का भी अनुष्ठान हो रहा है। घर मेहमानों से भरा है। मौका पाकर जिज्ञासावश मैं वहाँ मंदिर देखने पहुँची, मंदिर का मुख दक्षिण की तरफ देख मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वापसी में मंदिरवाले कमरे से दो लोगों के बोलने की आहट सुनाई दी, उनमें से शायद एक वास्तुशास्त्री था तो दूसरा अनुष्ठान करवानेवाले पंडितजी थे। पंडितजी कह रहे थे, "मंदिर का मुख पूर्व या पश्चिम की ओर होना चाहिए!" प्रत्युत्तर में वास्तुशास्त्री बोले, "केवल दक्षिण का विधान देखा जाता है। चुपचाप अपना काम करिए, यहाँ पर ज्यादा बोलना ठीक नहीं।"

मैं सोच रही थी, 'दोनों ही शास्त्रों के ज्ञाता हैं, प्रकांड पंडित हैं, फिर भी इनके विचारों में इतनी भिन्नता भला क्यों? जबकि परंपरानुसार हमारे यहाँ दसों दिशाओं में देवी-देवताओं का वास माना जाता है।'

वहाँ से लौटने के बाद भी मैं बेचैन थी। मैंने यह बात अपनी सखी स्वाति गुप्ता के सामने रखी, उसने कहा, "प्रकृति के रहस्यों को कौन समझ सका है? जिसको जिस रास्ते सुख मिले, उसे वह सब करने का अधिकार है।" उस वक्त उसके उत्तर से मैं संतुष्ट नहीं हो पा रही थी। सच जानने के लिए मैं कानपुर के कुछ बौद्धिक वर्ग के लोगों से मिली।

सबसे पहले आर्किटेक्स कर्वे मुंजाल ऐंड एसोसिएट्स के पार्टनर श्री प्रकाश सिंह मुंजाल साहब से मिली। पूछते ही वे बोले, 'इट इज ऑल होपलेस' ये सब पुराने समय की बातें हैं, जो आज के समय में कतई व्यावहारिक नहीं हैं। आप लोगों के दिमाग में इसे 'ओल्ड आर्कीटेक्टर' कह सकते हैं। वास्तुशास्त्र नाम का कीड़ा डाल दिया गया है हमारे दिमाग में, जो हर समय रेंगा करता है।"

अपनी बात को बल देने के लिए उन्होंने कानपुर के कई टेनर्स के अनेक उदाहरण दिए, जो वास्तुशास्त्र पर कतई विश्वास नहीं करते तथा उनके आर्किटेक्चर वास्तुशास्त्र के विरुद्ध हैं। परंतु उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति से भला कौन परिचित न होगा!

उनके जवाब से मैं कुछ सोचने पर मजबूर हो रही थी। मैं सोच रही थी कि समाज का एक खास वर्ग इन बातों पर कैसे इतनी जल्दी विश्वास कर लेता है? अंदर से आवाज आई, 'शायद जादू-टोने और मदारियों वाले हमारे इस देश का भाग्य ही कुछ ऐसा है। या फिर व्यक्ति रहस्य और रोमांच की तरफ कुछ जल्दी ही आकर्षित हो जाता है।'

कुछ समय बाद एक गृह-प्रवेश के अवसर पर मेरा जाना हुआ। आम लोगों के विचारों को जानने के लिए मैंने जान-बूझकर वहाँ वास्तुशास्त्र की बात छेड़ दी, मकान मालिक बोला, "सच क्या है, यह तो राम जाने, पर जब मकान में जीवनभर का पैसा लगाना है तो शक की गुंजाइश क्यों रखी जाए?"

कुछ दूर खड़े दो बुजुर्गों को कहते सुना। एक कह रहे थे, "इसका मतलब तो यह हुआ कि यह वास्तुशास्त्र शक की बातें हैं और शक का इलाज तो 'हकीम लुकमान' के पास भी न था।" यह सुन मुझे मुंजालजी की बातें याद हो आईं।

तभी परिवारवालों से तिरस्कृत दूसरे बुजुर्ग बोले, "जीवन में कुछ भी तो शास्त्रोचित नहीं अपनाते। तब वास्तुशास्त्र मानने का क्या मतलब? अभी इनसे गायत्री मंत्र पूछ लो, नहीं जानते। रामचरितमानस के अध्यायों के बारे में नहीं जानते, और तो और ठीक से आरती तक तो कंठस्थ नहीं होती है इन्हें तथा जब कर्तव्य पूरे करने का वक्त आता है,

तब तर्क-वितर्क करते हैं।"

मुझे लगा, समाज में वास्तुशास्त्र का यह बुखार तेजी से चढ़ा हुआ है। क्यों न इसके समाधान के लिए विज्ञान के जानकार तथा वास्तुशास्त्र पर पूर्ण विश्वास करनेवाले किसी ऐसे व्यक्ति से मिला जाए, जो इस विधा को पूरी तरह से समझता हो तथा अपने अनुभव के आधार पर हमें कुछ बता सकें। मुझे गुमटी नं. 5 स्थित जॉली नर्सिंग होम के मालिक डॉ. जोगिंदर सिंह इस दिशा में उपयुक्त व्यक्ति लगे।

एक दिन उनका हमारे घर आना हुआ, उनकी पत्नी चाँदनी भी उनके साथ थीं। इस बात को लेकर देर तक बहस छिड़ी रही। डॉ. साहब का कहना था कि "घर का उत्तर-पूर्व हिस्सा खुला होने से सूर्य की अल्ट्रावॉयलेट किरणें घर के अंदर आसानी से प्रवेश कर जाती हैं।" इस बीच मेरा बड़ा बेटा मयंक बीच में ही बोल पड़ा, "लेकिन अंकल यह तो कॉमनसेंस की बात है, इसमें वास्तुशास्त्र कहाँ से आ गया? भवन-निर्माण के समय कोई भी इंजीनियर या आर्कीटेक्ट घर में धूप का आगमन किधर से होना है, इस बात का ध्यान तो रखेगा ही।" डॉ. साहब ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे, वे उस बात को काटते हुए बोले, "अच्छा भाभीजी, आपको यह तो मानना ही पड़ेगा कि दक्षिण दिशा में सिर करके सोने से नींद अच्छी आती है।"

मेरे पति ने भी उनकी सहमति में सिर हिलाया। डॉ. साहब ने चाँदनी की ओर मुखातिब होकर कहा, "क्यों ठीक है न?" खुले विचारोंवाली चाँदनी बोली, "मुझे तो अपनी जगह बदल जाने पर उस रात नींद ही नहीं आई, पर तुम खुश तो मैं भी खुश।"

मैं असल मुद्दे पर आते हुए बोली, "डॉ. साहब, यह बताइए कि भाग्य बड़ा कि वास्तु?" डॉ. साहब कुछ देर रुककर फिर संयत होकर बोले, "नि:सदेह भाग्य।"

मैं सोच रही थी कि 'भाग्य ही बड़ा है, तब वास्तु की क्या आवश्यकता?' डॉ. साहब बोले, "वास्तु को मानना गलत नहीं है, लेकिन उसको तोड़-मरोड़कर गलत तरह से पेश करना गलत है। कुछ नहीं तो 1 प्रतिशत तो आपको यह सब करने से अवश्य फायदा होता है।"

मैं सोच रही थी कि 99 प्रतिशत सुख को छोड़कर मात्र 1 प्रतिशत सुख के पीछे भागना कहाँ की समझदारी है और अपनी इस सोच के साथ मैं मुसकरा पड़ी।

डॉ. साहब ने अपना अनुभव सुनाते हुए बताया कि दक्षिण भारत के एक वास्तुशास्त्री से उनका मिलना हुआ और उस वास्तुशास्त्री ने उन्हें बताया कि जिस प्रकार आप लोग शरीर के किसी खास हिस्से की सर्जरी करते हैं, उसी तरह हम भी वास्तुपुरुष का जितना दोष दूर किया जा सकता है, उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। डॉ. साहब उनके तर्क से बड़े प्रभावित थे, पर मैं सोच रही थी कि लोग बातों-ही-बातों में कितनी बातें बना जाते हैं? पर मैं चुप थी।

आगे वे बोले, "गंगा के घाटों से चले जाने के बाद शहर की दुर्दशा किससे छुपी हुई है?" यह सुन मेरे मन में एक विचार आया और मैं पहुँच गई बिजली महाप्रबंधक सुधीर गर्गजी के पास। मैंने कहा, "सर, यदि आप भी आग्नेय कोण (दक्षिण-पूर्व) में शहर का पावर हाउस लगवा लें तो इस शहर का तो कल्याण ही हो जाएगा।"

उन्होंने एक रहस्यमयी मुसकान से मेरा स्वागत किया, मानो वे कहना चाह रहे थे कि क्या इस प्रकार हम अपनी गलत मनोवृत्तियों तथा आदतों से भी छुटकारा पा जाएँगे?

एक मनोचिकित्सक ने इस विषय पर अपने विचार कुछ इस तरह रखे, "इनसान भयवश ही यह सब करता है।" मुझे लगा कि ये सभी बातें आस्था और विश्वास की हैं, तभी तो सड़क पर पड़ा पत्थर भी पूजा जाता है और हो सकता है एक कलाकार की अनुपम कृति को भी नकार दिया जाए।

मैं सोच रही थी कि सुख और समृद्धि की चाह में भटकता आदमी कर्तव्यों से विमुख हो किस तरह ठगों के

चक्कर में फँस जाता है? और ऐसे सभी लोग उनकी मानवीय कमजोरियों का फायदा उठाते हैं।

इस बात का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि इस बहाने इनसान के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है और वह अधिक आशावान हो अपने प्रयासों की ओर अग्रसर होता है।

कादंबरी ज्वैलर्स के मलिक श्री राकेश गोयलजी का कहना है, "जब आदमी की 'गोट' फँसती है, तब वह हारकर हर तरफ हाथ-पैर मारता है। कोई तो अदृश्य शक्ति है, जो हमारे साथ है।"

जितने मुँह उतनी बातें, शायद ओशो ने ठीक कहा है, "जीवन को केवल जीया जा सकता है, समझा नहीं जा सकता।"

वाह, वाह, क्या बात है!

समाज-सेविका ने वात्सल्य भरा हाथ अपनी बहू के कंधे पर रखकर कहा, "आप लोग मेरी उपलब्धि जानना चाहते हैं, तो यह रही मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि और यही है हमारे घर का आधार-स्तंभ।"

अपने मनोभावों के अनुकूल पास बैठे लोग मुसकरा दिए, मानो वे कहना चाहते हों, 'हाँ-हाँ पुटियाए रहो बहू को, जिससे रोज-रोज घर से बाहर निकलने और अखबारों में छपने का तुम्हारा रास्ता साफ रहे।' एक की आँखों से तो साफ झलक रहा था—'अरे, हम तो सब समझ रहे हैं। यह तो बच्ची है, यह क्या जाने तुम्हारा कपट-जंजाल!'

यह सब देख समाज-सेविका के मन पर चोट लगी, खुद को कुछ संयत कर वह बोली, "हम सभी बेटे पाने की दुआएँ करते हैं, भगवान् से मन्नतें माँगते हैं, तीरथ-व्रत करते हैं, फिर उन्हें पढ़ा-लिखाकर अच्छा इनसान बनाते हैं, क्या इसलिए कि एक दिन उसकी शादी हो, घर पर बहू आए और वह उसी का होकर रह जाए?" सहमति में सभी ने सिर हिलाया।

आगे वह बोली, "दोस्तो, सास-बहू की कहानियों को आदर्शों में ढालना हमारा काम है। बहू अपना सबकुछ छोड़कर ससुराल आती है सिर्फ एक पति के लिए, फिर बताइए, हमें उसको पूरी स्पेस देनी चाहिए या नहीं?" सभी लोग ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे, आगे वह बोली, "जब बहू पहली बार ससुराल आती है, हम उसकी आरती कर उसका स्वागत करते हैं, तब प्यार से गले लगाने की पहल भी तो हमारे ही द्वारा होनी चाहिए। यह मेरे घर की पहली ईंट है और मैं खुद को नींव का पत्थर मानती हूँ, जब मैं धैर्यवान होऊँगी, तभी तो यह ठहरेगी।" आगे वह बोली, "सास को माँ और बहू को बेटी भर कहने से काम न चलेगा। सच तो यह है कि हमें आपसी कुंठाओं को त्यागकर आपस में दुराग्रहपूर्ण व्यवहार करने से बचना होगा। बहू हमारे घर में खुश है, इसलिए मैं कहती हूँ कि मेरे घर की मजबूती मेरी बहू है।" अब तो सास के विचार सुन सभी लोग उसकी प्रशंसा करते नहीं अघा रहे थे।

पॉलिथीन और गौ-हत्या

एक दिन मैं अपनी छोटी बच्ची के साथ देवीजी के मंदिर में दर्शन करने गया, तो वहाँ पर मंदिर के बाहर प्रसाद व अगरबत्ती के खाली पैकेट और पॉलिथीन यहाँ-वहाँ फैली पड़ी थीं। उस कचरे के ढेर में से एक गाय उन पॉलिथिनों को खाकर अपना पेट भर रही थी। यह देख बच्ची ने पूछा, "पापा! लोग यहाँ पॉलिथीन क्यों फेंक देते हैं? उन्हें यह गाय खा रही है, जो कि बहुत नुकसानदायक होती है। हमें स्कूल में पढ़ाया जाता है कि पॉलिथीन बहुत समय तक नष्ट नहीं होती है। अत्याधिक मात्रा में खाने से गाय के पेट में इकट्ठी हो जाती है, जिससे गाय का पेट फूल जाता है और अंत में गाय मर जाती है। इस प्रकार पूरे देश में हजारों गाय मौत के मुँह में चली जाती हैं। गाय के अलावा बकरी, भैंस, कुत्ते, सूअर आदि जानवर भी इन पॉलिथिनों को खाकर मर जाते हैं।

"हम लोग मंदिर में प्रसाद चढ़ाकर पुण्य कमाने के लिए जाते हैं, किंतु अनजाने में ही इन पॉलिथीन को फेंककर हम गाय की मौत के भागीदार बन जाते हैं और गौ-हत्या का पाप हमारे ऊपर लग जाता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता पापा! कि हम इस कचरे को एक स्थान पर ही फेंके?" मैंने कहा, "हाँ, हो सकता है, इसीलिए तो एक कोने में कचरे का बड़ा सा डिब्बा रख दिया जाता है, किंतु लोग लापरवाही एवं आलस में पॉलिथीन यहाँ-वहाँ ही फेंक देते हैं।"

घर आकर मैंने गौर किया कि बच्चे ने सही कहा है कि हम मंदिर में पुण्य कमाने जाते हैं, लेकिन उलटे गौ-हत्या का पाप कमाकर आ जाते हैं। मैंने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो हमें करना ही पड़ेगा। अत: उसी क्षण मैंने एक योजना बनाई और उस योजना में अपनी बच्ची को भी शामिल कर लिया। उस योजना पर अमल करने के लिए शुक्रवार को मैं बच्चे के साथ देवी माँ के मंदिर में पहुँच गया। अगरबत्ती व प्रसाद चढ़ाने के बाद अगरबत्ती की पॉलिथीन को गेट की जाली में एक गाँठ लगाकर बाँध दिया, ऐसा ही बच्ची ने भी किया। यह देखकर मंदिर के पुजारी ने पूछा, "यह क्या कर रहे हो?" मैंन कहा, "पंडितजी, आज रात देवी माँ इस बच्चे के सपने में आई थीं और देवी माँ ने कहा था कि जो भी भक्त मेरे मंदिर में सच्चे मन से पाँच शुक्रवार पूजा करके पॉलिथीन से एक गाँठ बाँधकर जो भी मनौती माँगेगा, उसकी वह मनौती अवश्य पूरी होगी। मेरा व्यापार इस समय बहुत घाटे में चल रहा है, मेरी उधारी बहुत है, लोग पैसा वापस करते ही नहीं हैं, इसीलिए मैंने देवीजी से मनौती माँगी है कि मेरा उधार मिल जाए तथा मेरे व्यापार में लाभ होने लगे। इस प्रकार मैंने पाँच शुक्रवार जाकर देवीजी के मंदिर के पॉलिथीन बाँधकर मनौती माँगी।"

संयोग कहें या सचमुच माँ की कृपा, मेरा उधार में डूबा पैसा धीरे-धीरे वापस मिलने लगा और मुझे व्यापार में दिनोदिन अधिक लाभ होने लगा। अब तो मेरा व्यापार खूब चलने लगा। यह देख मेरे पड़ोसियों को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने हमसे पूछा तो हमने वही देवीजी के सपनेवाला किस्सा उन्हें कह सुनाया, मंदिर के पंडितजी ने भी अनेक लोगों को यह बात बताई, इस प्रकार यह बात धीरे-धीरे पूरे गाँव में आग की तरह फैल गई। अब तो जो भी लोग देवीजी के मंदिर जाते, वे पॉलिथीन को यहाँ-वहाँ न फेंककर उन्हें वही गेट पर ही जालियों में बाँध देते। जो लोग पॉलिथीन नहीं लाते, वे लोग वहीं पर पड़ी हुई पॉलिथिनों को उठाकर ही बाँधकर अपने लिए मनौती माँग लेते। इस प्रकार अब मंदिर में कहीं भी पॉलिथीन नीचे गिरी हुई दिखाई नहीं देती थी। अब मैं संतुष्ट था कि इस मंदिर के पास कोई भी गाय पॉलिथीन खाकर नहीं मरेगी। मैं आपको यहाँ बताना चाहूँगा कि यकीन मानिए, मेरे एक झूठ से यदि सैंकड़ों गायों की जान बचती है तो मुझे यह झूठ बोलना अच्छा लगा।

बार हाउस

रात के बारह बजने को आए। बार हाऊस में सुरा और सुंदरियों की महफिल शबाब पर थी। सब लोग वहाँ मस्ती में डूबे पड़े थे, यों कहें कि जिंदगी से हार-थक के अपना गम गलत करने में लगे हुए थे।

तभी एक बारगर्ल मिस्टर साहनी की जाँघों पर अपनी अधखुली जाँघें रखकर डांस करने लगती है। फिर क्या था, अगले ही पल चारों तरफ सनसनी फैल गई। सभी की उत्तेजनाएँ उछल रही थीं कि तभी···मिस्टर साहनी ने बारगर्ल को कसकर अपनी बाँहों में भींच डाला।

अब तक उसकी शराब का नशा भी बढ़ गया था। तभी उछलकर उसने पुनः कसकर चूमते हुए 'आई लव यू इरा' कहते हुए सबके सामने उसे प्रपोज कर डाला।

रात की पार्टियों में अकसर होती आई इन हरकतों से अजीज हुई इरा बड़ी हिकारत के साथ चिल्लाई—"व्हाट लव?" फिर एक कड़वाहट भरी मुसकान लिये अपने होंठों को खुद ही चूमते हुए बोली, "लव, लाइक प्यार! सब छलावा है यार! हमारी किस्मत में यह सब कहाँ?" फिर थोड़ी नाराजगी के साथ···उसके दोनों हाथों से अपने बदन को भिगोते हुए वह बोली···"साहनी साहब! आप अपने जिस प्यार की बात कर रहे हैं, ऐसे प्यार के व्यापारी तो यहाँ पर रोज आते हैं, पर क्या आप मुझे इज्जत के साथ अपना लाइफ पार्टनर बना सकते हैं?" और फिर कुछ नफरत के साथ···"नहीं न?"

फिर खुद ही आगे बोली···"साहब, यह प्यार-व्यार सब कोरी बकवास है।" फिर एक तेज हँसी के साथ···"जानते हैं क्यों? क्योंकि यह बिना बताए मन के रास्ते चलता हुआ कब शरीर के रास्ते निकल जाए, इसका तो किसी को भी पता नहीं चलता है।" कहती हुई, हाथ में शराब पकड़े लड़खड़ाती हुई दूर चली गई।

❑

अंतिम पन्ना

आपने बड़ी शिद्दत के साथ मुझे पढ़ा, महसूस किया, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद!

यों ही मिलती रहूँगी कहानियों की शक्ल लिये बार-बार।

"अभी जीत बाकी है, अभी हार बाकी है।
ये तो हैं कुछ पन्ने जिंदगी के, अभी 'उड़ान' बाकी है।"

इसी के साथ लेती हूँ एक और अर्धविराम।